वार्षिक पत्रिका - 2020

हंस

हंसराज कॉलेज

दिल्ली विश्वविद्यालय

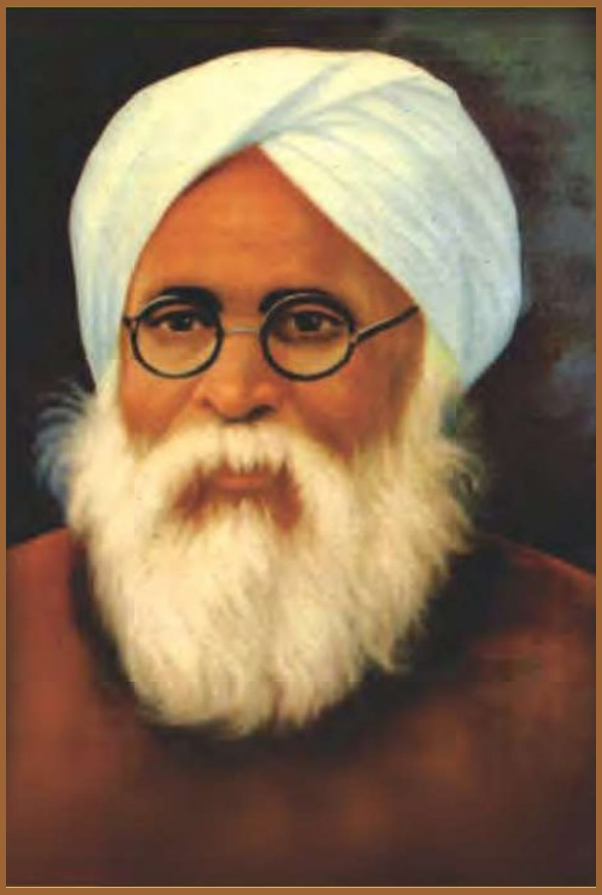

MAHATMA HANSRAJ

(1864-1938)

The College was founded to preserve the memory of Mahatma Hansraj, acknowledged as the founding father of the D.A.V. movement in undivided India. Frail in body but heroic in sprit, Mahatmaji was selflessly dedicated to the course of education. He started his career as the Honorary Founder Headmaster of D.A.V. School, Lahore, in 1886 and over the next 50 years went on to shape the destiny of the D.A.V. movement in India.

प्रकाशन समिति

- डॉ. विजय कुमार मिश्र
- डॉ. प्राची देवरी
- डॉ. मुकुंद माधव मिश्र
- सुश्री रूचि शर्मा

समन्वयक

- श्री सुशील कुमार गुप्ता
  (प्रशासनिक अधिकारी)
- श्री अमित चौहान
  (वरिष्ठ सहायक)

संदेश

प्रो. रमा

प्राचार्या

'हंस' हंसराज कॉलेज की बहुभाषी वार्षिक पत्रिका है। इसमें हिंदी, अंग्रेज़ी और संस्कृत भाषा की रचनाएँ प्रकाशित की जाती हैं। कविता, कहानी, लेख, समीक्षा, साक्षात्कार आदि के माध्यम से हंसराज कॉलेज परिवार के सदस्यों की रचनात्मकता को सामने लाने की दृष्टि से यह बेहद महत्त्वपूर्ण है। अब तक की यात्रा में 'हंस' निरतंर प्रगति की ओर अग्रसर है। 'हंस' कॉलेज के युवा विद्यार्थियों के साथ ही रचनात्मक लेखन में रूचि रखने वाले प्राध्यापकों के लिए भी एक बड़ा मंच है। इसमें छात्र और प्राध्यापक दोनों की रचनात्मकता एक साथ उद्घाटित होती है। इसके माध्यम से नए लिखने वालों को एक बेहतरीन प्लेटफॉर्म तो मिलता ही है साथ ही निरंतर लेखन की विशिष्ट प्रेरणा भी मिलती है।

कॉलेज के दिनों में 'हंस' में प्रकाशित होने वाले विद्यार्थियों में से कई लोग आज साहित्य, सिनेमा, मीडिया, कला आदि क्षेत्रों में अपना उल्लेखनीय योगदान दे रहे हैं। ये सभी आज अपने अपने क्षेत्र में जिस चोटी पर खड़े हैं उसके मूल में हंसराज कॉलेज और 'हंस' पत्रिका का विशेष योगदान है।

इस वर्ष अपने परम्परागत स्वरुप और नए भावबोध के साथ 'हंस' आपके सामने है। इस वर्ष का यह 'हंस' कोरोना संक्रमण के दौर में आए ठहराव के बीच भी रचनात्मकता को बनाए और बचाए रखने की दिशा में निरंतर सक्रियता के साथ काम करते रहने के हमारे संकल्प का प्रतिबिम्ब है। इस वर्ष भी अनेक महत्त्वपूर्ण रचनाओं से युक्त 'हंस' बेहद खास है। इसमें प्रकाशित होने वाले विद्यार्थियों, शिक्षकों को मेरी हार्दिक शुभकामनाएँ। उम्मीद करती हूँ कि आने वाले दिनों और वर्षों में ये सभी अपने लेखन से समाज और राष्ट्र को नई दिशा देने में समर्थ होंगे।

इस वर्ष के 'हंस' के संपादक मंडल को भी मैं हृदय से बधाई देती हूँ। अंत में मैं संपादक मंडल के सभी सदस्यों और सभी रचनाकारों के उज्ज्वल भविष्य की कामना करती हूँ।

सम्पादकीय

डॉ. विजय कुमार मिश्र

हंसराज कॉलेज की लंबी और गौरवशाली यात्रा के क्रम में हमारी वार्षिक पत्रिका 'हंस' का विशिष्ट स्थान है। इसके माध्यम से देश-दुनिया के सम्बन्ध में हमारे विद्यार्थियों, शिक्षकों एवं कर्मचारियों के अनुभव, दृष्टिकोण और संवेदनाएँ विविध साहित्यिक विधाओं के माध्यम से प्रकाशित होती रही हैं। उनकी भावनाओं, विचारों, रचनात्मकता आदि के प्रकटीकरण का एक बेहद उम्दा प्लेटफॉर्म है 'हंस'। इसके माध्यम से समय-समय पर विद्यार्थियों के द्वारा बनाए गए चित्र आदि के माध्यम से भी उनके भाव को विस्तार मिला है। कक्षाओं की औपचारिक शिक्षा प्रणाली और नियमित पाठ्यक्रम के मध्य इस प्रकार की रचनात्मक गतिविधियाँ विद्यार्थियों के समग्र विकास की दृष्टि से बेहद महत्त्वपूर्ण सिद्ध होते हैं।

संपादक मंडल ने विद्यार्थियों की रचनात्मकता को कविता, कहानी, लेख, समीक्षा, चित्र, फ़ोटोग्राफ आदि के माध्यम से 'हंस' के इस अंक में आपके समक्ष प्रस्तुत किया है। इसमें प्रकशित हिंदी, अंग्रेजी, संस्कृति तीनों भाषाओं की रचनाएं हंसराज कॉलेज के विद्यार्थियों की भाषाई और रचनात्मक विविधता का द्योतक है।

रचनाएं आमंत्रित करने से लेकर, उनके चयन, प्रूफ और संपादन आदि की दृष्टि से संपादक मंडल के सदस्यों ने जो श्रमसाध्य कार्य किया है खासकर कोरोना संक्रमण के इस दौर में वह अभिनंदनीय है। 'हंस' का प्रकाशन हमारे संपादक मंडल के सदस्यों के साथ ही प्रशासनिक कर्मचारियों के सहयोग के बिना संभव नहीं था। ऐसे सभी लोगों का हृदय की गहराईयों से आभार। कॉलेज की प्राचार्या प्रो. रमा ने हमेशा की तरह इस बार भी समुचित मार्गदर्शन और प्रोत्साहन से इस अंक को अंतिम रूप देने में बड़ी भूमिका निभाई है। इसके लिए प्राचार्या मैम का विशेष धन्यवाद।

आशा है 'हंस' का यह अंक आप लोगों को पसंद आएगा और आपकी रचनात्मक संतुष्टि की दृष्टि से भी यह बेहद उपयोगी सिद्ध होगा।

हिन्दी खंड

सम्पादक मंडल

डॉ. नीतू शर्मा

डॉ. महेंद्र प्रजापति

छात्र-सम्पादक

नितेश मिश्र

विषयानुक्रमणिका

1. पुस्तक समीक्षा/ माँ की आकांक्षा – डॉ. नीतू शर्मा 9
2. सह अस्तित्व के लिए आवश्यक शर्त – बहुसंस्कृतिवाद – सुयश दीक्षित 11
3. आधुनिक साहित्य की भूमिका – अनिल श्रीवास्तव 13
4. धूमिल : कल और आज – शैलेन्द्र गुप्ता 14
5. प्रेम – आशुतोष चौबे 15
6. दृश्य चिंतन –अमन प्रताप सिंह 15
7. प्रेमिका के प्रेम पत्र – सार्थक दूबे 15
8. फ़ौजी बनना कोई आसान बात नहीं थी। - केशव 16
9. खुशी – श्री कृष्णा यादव 18
10. पूर्णता – नीतेश प्रज्ञान 18
11. मानवता या प्रदर्शन - श्री कृष्णा यादव 18
12. अतीत – अंतरिक्ष श्रीवास्तव 19
13. मेरी आशाएं – मिनल ठवरे 19
14. माँ तुम बहुत याद आती हो – हर्षिता अग्रवाल 20
15. हक़ीक़त – प्रज्ञा 'गंभीर' 21
16. हिंदगी है जिंदगी – नीतेश कुमार पांडेय 22
17. कौन हूँ मैं? – नीतेश कुमार पांडेय 23
18. धर्म – ऋषभ शर्मा 24
19. नारी की पूजा – कीर्ति कश्यप 24
20. राजनीति – कीर्ति कश्यप 25
21. यहाँ सब कुछ बिकता है। - राम प्रवीश कुमार 25
22. हिंसा – पुष्पेन्द्र प्रताप सिंह 26
23. डर लगता है - कुमार मंगलम 26
24. बढ़ती शिक्षा की भरपाई – शैलेन्द्र गुप्ता 27

पुस्तक समीक्षा : माँ की आकांक्षा

डॉ. नीतू शर्मा
सहायक प्रोफेसर, हिंदी विभाग

भारतीय साहित्य में विक्रम सेठ लोकप्रिय व्यक्तित्व रहा है। इनका सम्बन्ध मूल रूप से कलकत्ता से रहा है। 21 वीं शती के जाने माने उपन्यासकार हैं। 'ए सुटेबल ब्वाय' 1993 में मूल रूप में अंग्रेजी में लिखा गया जिसे बाद में हिन्दी में अनुवादित भी किया गया। सन् 1994 में इस कृति पर उनको 'कामनवैल्थ राइटर्स प्राइज़' और 'डब्ल्यू. एच. स्मिथ लिटरेरी अवार्ड' भी प्राप्त हुआ। वर्ष 2006 में उनको प्रवासी भारतीय सम्मान से सम्मानित किया गया जो कि मिनिस्ट्री आफ़ ओवसीज़ इण्डिया की तरफ से होता है। 'कोई अच्छा सा लड़का' उपन्यास 'ए सुटेबल ब्वाय' का हिन्दी अनुवाद है। यह भारतीय पृष्ठभूमि पर आधारित विश्व प्रसिद्ध उपन्यास है। जिसमें एक भारतीय माँ रूपा मेहरा की अपनी बेटी लता के विवाह के लिए किसी अच्छे लड़के की तलाश की जाती है। इसके साथ-साथ यह कहानी उस समस्त भारतीय परिप्रेक्ष्य को उजागर करती है जो कि अभी नया नया स्वधीन हुआ है और संक्रमण काल से गुजर रहा है। ऐसे समय में जब जमीदारों के भाग्य का सितारा डूब रहा था और संगीतज्ञों और दरबारी रचनाकारों को संरक्षण मिल रहा था। देहातों में अकाल के बादल छाए हुए थे और पहले आम चुनाव से राजनीतिक ताकतों का ढांचा बदलने जा रहा था।

हिन्दू धर्मग्रंथों में समाज का विभाजन 'हिन्दू धर्मग्रंथों' के आधार पर चार वर्णों में किया जाता है। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र। आज इस रूप में जाति व्यवस्था को देखा जाता है और भारतीय समाज की यह कड़वी सच्चाई भी है कि समाज में रहने वाले व्यक्ति जाति, धर्म, संपत्ति आदि के कारण अपने को सर्वोच्च सिद्ध करना चाहते हैं यह वर्ण व्यवस्था भारतीय भूमि को आंतरिक रूप से खोखला कर रही है। यही कारण है कि समाज में रहने वाले व्यक्ति दलित व घृणित समझी जाने वाली जातियों में विवाह संबंध स्थापित नहीं करना चाहते। प्रस्तुत उपन्यास में पुष्पा मेहरा भी ऐसे समाज में रहने वाली एक साधारण महिला है जिसके अनुसार यदि उसकी पुत्री का विवाह किसी अन्य जाति व धर्म के व्यक्ति से होता है तो भविष्य में वह सुखी जीवन व्यतीत नहीं कर पायेगी। यहां मेहरा परिवार, कपूर परिवार, चटर्जी परिवार और खान परिवार के माध्यम से समाज के जाति सरंचना को बताया जाता है परंतु यहां ज्ञात होने अनिवार्य हैं कि व्यक्ति अपनी जाति से नहीं कर्म से उच्च एवं नीच समझा जाना चाहिए। जिसका कपूर परिवार प्रमुख उदाहरण है। जिसमें एक स्थानीय नेता और उसका आर्कषक किंतु लम्पट पुत्र शामिल है जो कि एक गायिका सईदा बाई फ़िरोज़ाबाद के इश्क़ में पागल हो चुका है।

साधारण तौर पर भारत नाम लेने से ही लोगों को इसकी विशालता का भान हो जाता है कि इस विशाल भूमि भाग में अनेक धर्मो के लोग रहते हैं जैसे हिन्दू, मुस्लिम, सिख, ईसाई, बौद्ध, जैन और पारसी आदि। मुख्य रूप से हिन्दू तथा मुस्लिम धर्म के अनुयायियों की आबादी अन्य धर्मों से अधिक है। इन दोनों में आपस में एक-दूसरे के धर्म को नीचा दिखाने की होड़ सी लगी रहती है यह दृष्टिकोण भारतीय अनेकता में एकता के सिद्धांत को कमजोर बनाती है। भारत में हिन्दू-मुस्लिम दंगे कहीं न कहीं भारत-पाक विभाजन और अंग्रेजों की फूट डालो और शासन करो की नीति का ही दुष्परिणाम हैं क्योंकि आये दिन हिन्दू-मुस्लिम दंगे यहाँ होते रहते हैं और ये सभी धर्म इनकी राजीनीतिक साजिशों का शिकार भी हो रहे हैं । ऐसी परिस्थितियों में एक हिन्दू लड़की का विवाह एक मुस्लिम लड़के के साथ होना अपने आप में एक आश्चर्यजनक घटना होगी क्योंकि रूढ़िवादी विचारधारा आज व्यक्तियों के मन में घर किये हुए है।

चूंकि सन्तान माँ का अभिन्न अंग होती है और माँ के माध्यम से एक ही बच्चा दुनिया में जन्म लेता है इसलिए कोई भी बच्चा माँ के सबसे अधिक करीब होता है। वह उसका पालन पोषण करती है उसमें मानव समाज के प्रति समझ पैदा करवाती है। उसे एक श्रेष्ठ और जागरूक नागरिक बनाती है। बच्चे के तमाम सुख-दुःख में सहयोगी उसके कष्टों को दूर करने वाली केवल और केवल माँ होती है 'कोई अच्छा लड़का' में पुष्पा मेहरा भी एक ऐसी माँ की भूमिका अदा करती है जो अपनी पुत्री के लिए सुयोग्य वर की तलाश में लगी हुई है ताकि उसकी पुत्री का भविष्य जिसके भी साथ जुड़ा हो उज्ज्वल बना रहे। माँ की यह चिंता अपनी पुत्री के लिए जायज है।

सामान्यतः प्रेम में मनुष्य यह नहीं देख पाता कि किस व्यक्ति से, कैसे व्यक्ति से, किस स्थान पर, किस धर्म के, किस जाति के व्यक्ति से उसे प्रेम हो रहा है क्योंकि लता के हृदय में कबीर के प्रति जब प्रेम का अंकुरण फूटता है तो उसे ज्ञात नहीं हो पाता कि वह किस धर्म के मनुष्य की ओर आकर्षित हो रही है ऐसी ही परिस्थिति कबीर की भी समझी जा सकती है आगे चलकर जब लता को ज्ञात होता है कि कबीर एक मुस्लिम लड़का है तो वह चाहते हुए भी उससे दूरी नहीं बना पाती क्योंकि उसके हृदय में कबीर के लिए पहली तथा दूसरी मुलाकात में जो प्रेम की लहरें उमड़ी थीं वह अब सागर में परिवर्तित हो चुकी हैं अर्थात उनका पवित्र प्रेम सागर की अथाह गहराईयों में समा चुका है। प्रस्तुत उपन्यास में लता औऱ कबीर की मनोव्यथा का मार्मिक चित्रण हुआ है–

"प्रेम के पुजारी को मंदिर व मस्जिद नहीं चाहिए, बस गंगा जमुना जैसा मिलन होना चाहिए।"

इस उपन्यास में यदि पुष्पा मेहरा के व्यक्तित्व को देखा जाए तो उसे एक विधवा माँ के रूप में चित्रित किया गया है जो कि अपनी पुत्री के लिए सुयोग्य वर की तलाश कर रही है। उसका मानना है कि पुत्री के लिए योग्य वर समान जाति तथा उच्च खानदान वाला होना चाहिए। जिस घर में उसकी बेटी का भविष्य सुनहरा व सुरक्षित बना रहे।

हास्य व्यंग्य की छटा भी कथाकृति में तब विशेष उल्लेखनीय हो जाती है जब लता की सबसे प्रिय सहेली मालती उसके साथ मज़ाक करती है कि लता जिस लड़के को प्यार करती है मालती उसे उबला आलू कहकर बुलाती है परंतु दूसरी तरफ वह लता के मुख के भाव भंगिमा को भी अच्छी तरह समझ लेती है और तबउसे (मालती) को उनके (लता एवं कबीर) के प्रेम सम्बन्धों के बारे में पता चलता है तो लता को सत्य बोलने के लिए मजबूर होना पड़ता है। फिर लता (कबीर) उस लड़के से हुई मुलाकात का गुलमोहर के वृक्ष के नीचे जिक्र करती है।

लता इस कृति में एक हिन्दू परिवार से सम्बन्ध रखती है। वह पुष्पा मेहरा की बेटी है। लता शांत स्वभाव किन्तु छोटी – छोटी घटनाओं से भयभीत होनेवाली और अपनी माँ (पुष्पा मेहरा) से अत्यधिक स्नेह रखने वाली भारतीय लड़की है। जिसको इस व्यक्ति पसन्द आता है जिससे उसकी आंखें सर्वप्रथम बार 'इम्पीरियल बुक डिपो' पर मिली थी और यह कहानी धीरे-धीरे आगे बढ़ती जाती है। चूंकि लता को एक मुस्लिम लड़के (कबीर) से प्रेम हो जाता है इसलिए उसके लिए वही सूटेबल ब्वॉय अर्थात् अच्छा सा लड़का या श्रेष्ठ लड़के का पर्याय बन जाता है।

'कोई अच्छा सा लड़का' औपन्यासिक कृति में कबीर एक मात्र ऐसे पात्र के रूप में हमारे सामने आता है जिसका सम्बन्ध एक मुस्लिम (खान) परिवार से है। वह बेहद चंचल और अवसर का लाभ उठाना भली-भांति जानता है क्योंकि उपर्युक्त रचना में जिस समय लता परीक्षा से उदास होकर अकेले समय काट रही होती है तभी कबीर अपने दोस्तों से नजरें बचा कर तथा मौके का लाभ उठा कर लता से बातचीत करके उसकी पीड़ा को कम करने की कोशिश करता है और किसी सीमा तक वह सफल भी हो जाता है परंतु वास्तविकता यहां यह भी है वह मन ही मन लता को पसंद भी करता है।

यदि इस उपन्यास की भाषा शैली को देखा जाए तो वह सरल, सहज, सुबोध, प्रसंग एवं भावानुकूल है जिसमें हिन्दी, उर्दू, अरबी, फ़ारसी के शब्दों के अतिरिक्त प्रचुर मात्रा में प्रादेशिक शब्दवाली का प्रयोग मूल विषय वस्तु के अनुरूप हुआ है। यहां सामाजिक कुरूतियों पर करारा व्यंग्य दृष्टिगोचर होता है। इसमें युवावस्था में प्रेम की चर्मोत्कर्ष स्थिति से भी हमें परिचित कराया गया है। यहाँ विक्रम जी ने मूल रूप से संतान खास तौर पर बेटी के भविष्य को लेकर एक भारतीय मां की चिंता का उद्घाटन किया है।

सारांशतः साम्प्रदायिकता, भूमि सुधार आंदोलन, जमीदारों और रजवाड़ो का पतन, अकादमिक गतिविधियां और भिन्न भिन्न परिवारों के टूटते आंतरिक संबंध जैसे अनेक चर्चित मुद्दों को इस उपन्यास में उठाया गया है। वास्तव में 'कोई अच्छा सा लड़का' के माध्यम से समलैंगिक संबंधों का भी स्पष्ट रेखांकन हुआ है चूंकि समान आयु के लड़के – लड़की का अथवा एक समान आयु की लड़की – लड़के या दोनों का एक दूसरे के प्रति आकर्षण होना स्वाभाविक है और यहाँ उसका प्रभावशाली वर्णन हुआ है।

कोई अच्छा सा लड़का (उपन्यास) : विक्रम सेठ
अनुवादक : भोपाल गांधी
प्रकाशन : वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली
प्रकाशन वर्ष : 2008

सह अस्तित्व के लिए आवश्यक शर्त – बहुसंस्कृतिवाद

सुयश दीक्षित
परा स्नातक (उत्तरार्द्ध)

"ये पूरब-पश्चिम मेरी आत्मा के ताने-बाने हैं। मैंने एशिया की सतरंगी किरणों को अपनी दिशाओं के इर्द-गिर्द लपेट लिया और मैं यूरोप और अमेरिका की नर्म आंच की धूप-छांव पर बहुत हौले हौले नाच रहा हूँ। सब संस्कृतियाँ मेरे सरगम में विभोर हैं क्योंकि मैं ह्रदय की सच्ची सुख शांति का राग हूँ। बहुत आदिम बहुत अभिनव।"

किसी भी कार्य को करने के लिए या किसी स्थिति की निर्मिति के लिए उसके पीछे प्रेरणा शक्ति का होना अनिवार्य होता है। यदि हनुमान के पास जामवंत के रूप में प्रेरणा का स्रोत न होता तो वह अपने समय की परिस्थितियों से सामंजस्य न स्थापित कर पाते। इसी प्रकार महाभारत में यदि कौरव तथा पांडवों के स्वाभाव में भिन्नता न होती तो न महाभारत होता और न ही धर्म के पुनर्स्थापना की आवश्यकता। अतः यह कहा जा सकता है कि हर अवधारणा हर परिस्थिति की उत्पति के पीछे कोई न कोई घटक अवश्य होता है। इसी क्रम में सहअस्तित्व के लिए बहुसंस्कृतिवाद का होना आवश्यक होता है। सहअस्तित्व की भावना को बनाये रखने के साथ – साथ उसके निर्माण में भी बहुसंस्कृतिवाद की भावना होती है। यदि समाज में संस्कृतियों की बहुलता नहीं होगी तो उससे जुड़े द्वंद्व उत्पन्न नहीं होंगे, जीवनशैली में एकरूपता होगी जिसके परिणामस्वरुप व्यक्ति का जीवन खुशियों के स्थान पर निराशा तथा कुंठा से भर जायेगा। मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है और जीवन की विभिन्न स्थितियों के लिए समाज पर निर्भर है। ऐसे में यदि मनुष्य समाज की उपस्थिति में ही जीवित होगा तो वहाँ पर विभिन्न संस्कृतियों की उपस्थिति भी अनिवार्य है और इसी अनिवार्यता का परिणाम सामने आता है – सहअस्तित्व की भावना के रूप में।

इस क्रम में सबसे पहले हमें सहअस्तित्व और बहुसंस्कृतिवाद की अवधारणा के मूल को समझना होगा। सहअस्तित्व का सामान्य अर्थ है दो या दो से अधिक संस्कृतियों, विचारों, मनुष्यों आदि का साथ में होना तो वहीं बहुसंस्कृतिवाद का अर्थ समाज में संस्कृतियों की बहुलता से है जिनमें परस्पर प्रेम तथा सौहार्द का सम्बन्ध हो। एक अवधारणा के तौर पर बहुसंस्कृतिवाद की संकल्पना अमेरिका तथा यूरोप में श्वेत संस्कृति के पक्ष में अन्य संस्कृतियों के समरूपीकरण के विरोध में प्रतिसांस्कृतिक व मानवाधिकारवादी आंदोलनों के द्वारा उत्पन्न हुई। बहुसंस्कृतिवाद की अवधारणा मेल्टिंग पॉट कल्चर की अवधारणा से इतर उत्प्रवासन से उत्पन्न 'सलाद के प्याले' (SALAD BOWL THEORY) सिद्धांत से सम्बंधित है जिसके तहत एक राष्ट्र के अंतर्गत विभिन्न संस्कृतियों/राष्ट्रीयताएँ/विचारधाराएँ अपने अलग-अलग रंगों के साथ अपनी पहचान बनाये रखती है| अतः यदि सामान्य रूप में हम बहुसंस्कृति की परिभाषा स्थापित करें तो विभिन्न धर्मों, लैंगिक रूप से विभिन्न प्राणियों,विचारधाराओं की अवस्थिति से लिया जा सकता है। एक सभ्य समाज सदैव ही अपनी सांस्कृतिक बहुलता के लिए जाना जाता है। आज के समय में जब विभिन्न देशों में धर्म का राजनीति में प्रभाव समाप्त हो रहा है तो बहुसंस्कृतिवाद की अवधारणा कुछ अमेरिकी (कनाडा,मैक्सिको) और यूरोपीय (नीदरलैंड,जर्मनी आदि) देशों की अधिकृत नीति का का भाग बनती जा रही है जो विभिन्न सांस्कृतिक समूहों के प्रति सामान व्यवहार व आदर की वकालत से लेकर उनके सामाजिक, भाषिक, आर्थिक और राजनैतिक हितों की सुरक्षा के साथ इस सांस्कृतिक विविधता को कायम रखने तथा प्रोत्साहित करने तक विस्तृत है।

सैद्धांतिक रूप में चार्ल्स टेलर, माइकल सैडर व मैकेंटाइर जैसे समाजशास्त्री बहुसंस्कृतिवाद को आवश्यक मानते हैं। सहअस्तित्व के लिए एक व्यापक एवं खुली सोच की आवश्यकता होती है और इस प्रकार की सोच का विकास विभिन्न संस्कृतियों के मिलन से ही सम्भव है। भारतीय सन्दर्भ में इसे देखे तो प्राचीन काल में द्रविण मूल भारतीय थे और आर्य पश्चिम एशिया से आये। प्रारंभ में इनमें टकराव रहा किन्तु धीरे-धीरे विचारों के आदान प्रदान से सामंजस्य स्थापित हो गया और आज वह दोनों समाज अपने अस्तित्व के साथ प्रासंगिक भी है। इस विचार की अनिवार्यतः सबसे ज्यादा भारत में ही नज़र आती है जहाँ कहा जाता है कि □कोस कोस पर पानी बदले, चार कोस पर बानी□। टेलर अपनी पुस्तक 'दि पॉलिटिक्स ऑफ़ रिकग्निशन' में मानते हैं कि मनुष्य अपनी पहचान समाज में निर्मित करता है किन्तु सोच को विकसित और व्यापक करने के लिए बहुसांस्कृतिक समुदाय आवश्यक है। इन समुदायों के अभाव में व्यक्ति कट्टर एकांगी और नीरस होता जाता है। भारत जैसे बहुविविधता वाले राज्य में सहअस्तित्व और लोकतंत्र को बनाये रखने में बहुसंस्कृतिवाद और भी आवश्यक हो जाता है। इस ओर विचार करते हुए विचारक भीखू पारेख अपनी पुस्तक 'रीथिंकिंग मल्टीकल्चरलिज्म; कल्चरल डाइवर्सिटी एंड पॉलिटिकल थ्योरी' में राजनैतिक विकेंद्रीकरण

तथा लोकतंत्र के लिए बहुसंस्कृतिवाद को आवश्यक मानते हैं तथा उनकी संकल्पना को स्पष्ट करते हुए उसमें मानवीय गरिमा,सहिष्णुता और व्यवहारिक निष्पक्षता को प्रमुखता देते हैं जिससे समाज में सहअस्तित्व की प्रबल भावना विकसित हो।

सहअस्तित्व तथा बहुसंस्कृतिवाद के अभाव में संस्कृतियाँ इतिहास में तब्दील हो जाती है| इसका प्रमुख कारण होता है उनकी एकरूपता। इकबाल का शेर है –

" यूनान-ओं-मिस्र रोमा, सब मिट गए जहां से
कुछ बात है कि हस्ती, मिटती नहीं हमारी "

यह 'कुछ बात' और कुछ नहीं बल्कि सहअस्तित्व की भावना है जो भारतीय मल्टीकल्चरिज्म के कारण उत्पन्न हुई और भारतीय परम्परा का सतत पहलू बनी हुई है। इसके उदाहरण राष्ट्र के रूप में देखा जा सकता है। भारत में जहाँ व्यक्ति अपनी राष्ट्रीय पहचान को क्षेत्रीय पहचान के साथ धारण करता है वही अमेरिका जैसे राष्ट्र में मेल्टिंग पॉट कल्चर के कारण क्षेत्रीय पहचान तथा संस्कृति की समाप्ति हो जाती है और सहअस्तित्व की उत्पत्ति नहीं हो पाती है। राष्ट्र में सहअस्तित्व की धारणा विभिन्न वृहत विचारधाराओं, धर्मों और समाजों की उपस्थिति से फलीभूत होती है। यह प्रक्रिया एक परिवार के अंतर्गत भी देखी जाती है। परिवार में पिता की विचारधारा अलग होती है जो अपने प्राचीन सरोकारों को लेकर चलती है वही वयस्क पुत्र द्वारा आधुनिक सरोकारों से युक्त विचारों का पालन किया जाता है किन्तु तब भी पारिवारिक प्रतिमान सामान्यतः बने रहते हैं, दोनों मर्यादाओं का निर्वहन करते हुए अपने विचारों के सहअस्तित्व को बनाये रखते हैं। यही बात मित्रों के मध्य भी होती है। मित्र मंडली में सदैव विचारों में बहुलता होती है उसमें द्वंद्व भी होते हैं किन्तु सहअस्तित्व का भान सदैव बना रहता है। यह बात मात्र विचारों तक सीमित नहीं रहती है यदि मित्र विभिन्न सांस्कृतिक पृष्ठभूमि के हो तो कट्टरपन का विकास नहीं हो पाता है जिससे समाज में सहअस्तित्व की भावना का प्राबल्य बना रहता है।

समाज में विविधता जितनी अधिक होती है वहाँ प्रत्येक संस्कृति अन्य की अपेक्षा अपना वजूद बनाये रखने का निरंतर प्रयास करती है, ऐसी स्थिति में सभी संस्कृतियाँ बची रहती हैं और साथ ही एक भावना उत्पन्न होती है – सहअस्तित्व की भावना।

सहअस्तित्व की भावना जहाँ भी उत्पन्न होगी वहाँ इस भावना के उदय के पहले बहुसंस्कृतिवाद के लक्षण निश्चित तौर पर प्रकट होंगे। प्रसिद्ध वैज्ञानिक चार्ल्स डार्विन ने सिद्धांत दिया – 'सर्वोत्तम की उत्तरजीविता का सिद्धांत' अर्थात जीवन के लिए शक्ति का संघर्ष। इस सिद्धांत के अनुसार जो शक्तिशाली है वह अपने जीवन की राह खोज ही लेगा चाहे जैसे भी हो। जंगल का उदाहरण ही लें तो मांसाहारी तथा शाकाहारी दोनों संस्कृतियाँ अपने जीवन की सुरक्षा के लिए मार्ग खोज ही लेती हैं और इसके साथ उदय होता है सहअस्तित्व का गुण। इस प्रकार मांसाहारी तथा शाकाहारी दोनों संस्कृतियों की उपस्थिति से ही यह गुण उत्पन्न हुआ। साहित्य लेखन के क्षेत्र में भी रचनाकार अपनी रचना को बहुसंस्कृतियों से युक्त करता है तभी उसमें प्रासंगिकता उत्पन्न हो पाती है। इसके उदाहरण के लिए 'गोदान' उपन्यास को ही ले लें तो वहाँ पर कृषक संस्कृति को निरुपित करने वाला 'होरी' भी है तो सामंती व्यवस्था के 'लाला मातादीन और पंडित' भी। वहाँ पुरानी चेतना से विरोध करता 'गोबर' भी है तो नवीन संस्कृति के 'प्रोफेसर मेहता और 'मालती' भी। इस प्रकार में गोदान में चित्रित यह बहुसंस्कृतिवाद ही पात्रों को आपस में संघर्ष के बाद भी जीवित रखता है और इस क्रम में सहअस्तित्व का गुण परिलक्षित होता है। इस गुण से ही समाज के प्रति गोदान की प्रासंगिकता बनी हुई है। यही उदाहरण महाकाव्य 'कामायनी' के द्वारा भी स्पष्ट है जहाँ वैज्ञानिक संस्कृति का प्रतीक 'इड़ा' मनुष्य संस्कृति का प्रतीक 'मनु' तथा आंतरिक चेतना की दृष्टि 'श्रद्धा' के माध्यम से बहुसंस्कृतिवाद को दिखाते हुए द्वंद प्रदर्शित किया है तो साथ ही उन सभी को सुरक्षित रखने के माध्यम से सहअस्तित्व का लक्षण। इस प्रकार विभिन्न संस्कृतियों की उपस्थिति ही सहजीविता का गुण उत्पन्न करती है।

बहुसंस्कृतिवाद ही है जिससे सहअस्तित्व का गुण आता है किन्तु इसके कुछ दुष्परिणाम भी होते हैं। बहुसंस्कृतिवाद की उपस्थिति में अनेक बार बहुसंख्यक वर्ग जिससे यह अपेक्षा रहती है कि अल्पसंख्यकों का ख्याल रखे, संस्कृति पर हमला समझ कर आक्रामक हो जाता है जिससे समाज अशांत होता है, दंगे होते हैं, सौहार्द और प्रेम का वातावरण समाप्त हो जाता है। वर्ल्ड ट्रेड सेंटर पर हमला होने के पश्चात आतंक के विरुद्ध युद्ध आरम्भ होता है जिसे इस्लामिक राष्ट्र इस्लाम के विरुद्ध युद्ध का नाम देकर उग्र हो जाते हैं और आतंकवाद एक लाइलाज बीमारी बन जाता है। इसी क्रम में एक और चिंता प्रसिद्ध विद्वान 'ब्रायन बैरी' ने अपनी पुस्तक 'कल्चर एंड इक्वेलिटी' में व्यक्त की है। वह मानते हैं कि बहुसंस्कृतिवाद चूँकि समुदाय कि सुरक्षा पर बहुत ध्यान देता है इसलिए इसके तर्क बाहरी पाबंदियों से समाज की हिफ़ाज़त की तरफ़दारी करते हैं किंतु आन्तरिक तौर पर व्यक्तियों पर प्रतिबन्ध का अधिकार दे देते हैं। इससे व्यक्तियों को आज़ादी के हनन का ख़तरा लगता है और वे आन्तरिक अस्थिरता भी कभी-कभी उत्पन्न करते हैं। इस प्रकार सह-अस्तित्व के लिए अनिवार्य शर्त बहुसंस्कृतिवाद के साथ कुछ खतरे भी हैं उनका भी ख्याल रखना होगा।

बहुसंस्कृतिवाद ही वह शर्त है जो समाज में सहअस्तित्व के भाव की उत्पत्ति करती है। जहाँ भी बहुसंस्कृतिवाद होगा वहाँ पर सहअस्तित्व का भाव स्वतः ही आ जायेगा। राजनैतिक, लैंगिक सभी क्षेत्रों में यह लागू होता है। धर्म, विचार, संस्कृति आदि की जिस क्षेत्र में बहुलता होगी वहाँ द्वंद्व होगा तथा अस्तित्व की रक्षा का बोध होगा और सह-अस्तित्व का भाव उदित होगा। अतः निष्कर्ष रूप में ये कहना उचित होगा की सहअस्तित्व के लिए बहुसंस्कृतिवाद (चाहे जिस भी क्षेत्र में हो) अनिवार्य होता है।

आधुनिक साहित्य की भूमिका

अनिल श्रीवास्तव
कला स्नातक हिन्दी (विशेष) तृतीय वर्ष

किसी भी काल, वातावरण, स्थिति की सम्वेदना अपने पूर्ण वेग में तब आती है जब उस परिवेश के अतिग्रस्त नियमों का कुप्रभाव, समाज, जाति, धर्म, साहित्य इत्यादि पर फलित होना प्रारम्भ हो जाता है। समाज की विषमताओं को देखकर मनुष्य की छटपटाहट उसे क्रांति के लिए बाध्य कर देती है और यहीं से एक नया युग, नई चेतना, नये विचार और नये समाज की नींव स्फुटित होती है जिसकी जड़ें समाज के हर हिस्से में फैलना चाहती हैं। उसका ज्ञानरूपी प्रकाश हर जगह दैदीप्यमान होना चाहता है और लम्बी धारा के समान उसे युग युगान्तर तक पोषित करने का प्रयास करता है क्योंकि Alfred Lord Tennyson ने अपनी कविता The Passing of Arthur में लिखा है –

"One good custom should currupt the world."

मनुष्य की भावान्मुखी संवेदना, उसके जीवन जीने के नये प्रकार, समाज की व्यवस्था उसे नवीन साँचे में ढालने के लिए अग्रसर होती है क्योंकि प्रत्येक मनुष्य का प्रथम कर्त्तव्य खुद को समाज व परिस्थिति के अनुकूल बनाते हुए क्रांति के उदय पर होता है अन्यथा स्थिति में "डायनासोर" जैसे विशालकाय होने पर भी हम अपना विनाश स्वयं कर लेते हैं और जिराफ़ जैसे बनकर अपना बचाव। "पूर्वाग्रह और अतीत की रूढ़ियों, परंपराओं, नीतियों, सिद्धान्तों और कुचक्रों से बाहर निकलकर नये जीवन, नये समाज का निर्माण ही तो आधुनिकता है। " हम तब तक आधुनिक नहीं हो सकते जब तक हमारे विचार हम पर प्रबल न हो जाये और हम नये तर्कों का विकास न कर लें। इस बदलाव की धारा में हम अतीत को जरूर याद रखें और भविष्य की सुंदर कल्पना भी करें तभी आपका वर्तमान में बदलाव का मन्तव्य पूर्ण होगा और आप अपनी अस्मिता को पुरजोर अग्रसर कर पाएंगे। एक अंग्रेजी समीक्षक जे.एस. फ्रेजर. के अनुसार – "आधुनिकता को अपनी सुरक्षा के लिए अतीत से सम्बन्ध रखना चाहिए।"

बात जब हिंदी साहित्य के इतिहास पर आती है तो साहित्य इतिहास रूपी भवन का तीसरा स्तम्भ अर्थात नवीनता की प्रचुरता से ओत प्रोत आधुनिक युग, साहित्य लेखन के सिद्धान्तों को एक नई चुनौती देता है जहाँ मुख्य केंद्र में परम् ब्रह्म सत्ता नही है अपितु मानवीय जीवन की विषद पीड़ा, क्षोभ, दरिद्रता और स्वतंत्रता की अभिलाषा है। यहाँ मनुष्य की जिजीविषा उसके जीवन का मूल नहीं है कारण बस इतना है कि वह समाज की बेड़ियों से मुक्त होना चाहता है उससे जीवन के दुःखों को अब भोगा नहीं जाता है। वह भाग्य से ज्यादा कर्म में विश्वास रखता है, कर्म को ही जीवन का सार समझता है यहाँ मानवीय जीवन में असंतोष है वह जीवन के सारे रहस्यों को जानना चाहता है, परम् सत्ता को समझना चाहता है,"न की मेरियाना गर्त में पड़े रखकर अपने विचारों को दबाना चाहता है ।"

कवियों की भाषा में जीवन का यथार्थ झलकता है, क्रांति का भाव प्रस्फुटित होता है। अपने वैयक्तिक जीवन का चित्रण इतना भावपूर्ण करता है कि वह सामाजिक जीवन की इच्छाओं को दिखाता है। प्रकृति यहाँ नायिका का रूप धारण करती है तो उसका सूक्ष्म अंकन नखशिख वर्णन प्रतीत होता है। समाज की कुरूपता पर जब लेखनी चलती है तो नये उपमान, नये भावों का आविर्भाव होता है। जिसमे शंकर का अद्वैतवाद, रामानुज का विशिष्टाद्वैतवाद भी अछूता नहीं रहता है। कबीर की बोली और गिरिधर कविराय की कुंडलियां भी नए सन्दर्भों में देखती है। इस नवीन चेतना में समाज के हर उस पहलू को दृष्टिगत किया जाता है जो काव्य से उपेक्षित है, समाज ने जिसे स्थान नहीं दिया।

अंततः राजनीति, दर्शन इत्यादि को देखने का नज़रिया बदलता है तो स्त्री, दलित विमर्श जैसे मुद्दे इस ज्योति में घी का कार्य करते हैं। समाज की बदलती तस्वीर का उत्तरदायित्व अब इन्हीं मुद्दों के परिसर से निकलता है और वास्तव में यही अधुनिकता का स्वरूप है।

धूमिल : कल और आज

शैलेन्द्र गुप्ता
कला स्नातक हिन्दी (विशेष) द्वितीय वर्ष

नाम के उलट धूमिल जितने पहले की राजनीतिक और सामाजिक परिस्थितियों की विसंगति को प्रकाश में लाते हैं उससे कहीं ज्यादा आज की कोलाहल भरी विसंगतियां सहज ही उनको अपने में समेट लेती है। उन्होंने ब्रिटिश पराधीनता को और आज़ादी से पहले लोगों के दिलों में पनपते लघु स्वप्न जैसे रोटी, कपड़ा और मकान को भी देखा और स्वयं भी बुना है। देश के आज़ाद हो जाने पर लोकतंत्र नाम का एक ऐसा ढांचा बना जिसमें कागजों पर देश का विकास अनवरत रुप से होने लगा। उससे कहीं ज्यादा उसको चलाने वाले फलने फूलने लगे जो आज भी समाज में विद्यमान है। धूमिल ने न केवल उसको देखा बल्कि उसे अपने काव्य सृजन द्वारा मुँह तोड़ जबाब देने का भी जोखिम उठाया है-

"हाँ यह सही है कि
कुर्सियां वही है
सिर्फ टोपियां बदल गयी हैं। "

ये चंद पंक्तियाँ लोकतंत्र की कड़वी सच्चाई उजागर करती हैं। लोकतान्त्रिक सरकार जो आज़ादी नाम की कोयल मधुर गान के लिए लायी गयी थी उसने तो दादुर से भी मीठी और कोमल आवाज़ द्वारा लोगों को आँख-कान मूँदने पर विवश कर दिया जिसके चलते रोजाना सैकड़ों रामदास को यमराज की सभा में मंत्री बनने के लिए या तो चाकू नामक फल खाना पड़ता या बस, ट्रक और कार से भेंट करनी पड़ती या माताराती का उपवास करके अपनी बलि देनी पड़ती है-

" दुर्घटनाओं का सिलसिला जारी है
भूख हड्डियों में बज रही है।"

सत्ता फेरबदल के साथ इन सब चीजों में अभी भी जड़ता अपनी जड़ें तह तक बैठाए है और बदलने का नाम वैसे ही नहीं ले रही है जैसे चायनीज माल की बदलने की गारंटी कोई नहीं लेता अगर लेता है तो सिर्फ धोखेबाज। वैसा ही हाल राजनीति का हो गया है। आज के समय में आये दिन भूख, बीमारी और ग़रीबी के चलते और बढ़ते हुए वाद-विवादों के कारण न जाने कितने लोग मुत्यु की गोद में अमन की नींद लिये चिरकाल के लिए सो जाते हैं। मनुष्य नाम की चिड़िया अब अपनी ही जाति की चिड़िया का घोसला तोड़ने लगी और कुछ लोग इसका मज़ा तीतर बटेर के दंगल की तरह ले रहे हैं। इस कारण धूमिल लिखते हैं-

"न कोई प्रजा है
न कोई तंत्र है
यह आदमी के खिलाफ
आदमी का खुला
षड्यंत्र है"

जब जनता जनता न रहकर भीड़ का रूप ले लेती है तब न जाने कितना नुकसान कर देती है। इस कारण लेखक की तलाश समाज में ऐसे आदमी के लिए होती है जिसमें मानवता हो, जो सुसभ्य हो। जो सभी को समान नज़र से देखता हो। इस राह पर कवि मोचीराम की कल्पना कर एक ऐसे ही व्यक्ति का निर्माण करता है जो दूसरों को एकसमान नजर से देखता है परंतु अन्य सभी उसको अलग-अलग नजर से देखते हैं। फिर भी मोचीराम अपने अंदर के आदमी के जिंदा रखने के लिए तैयार है। कवि कहता है- "मेरी निगाह में/ न कोई छोटा है/ न कोई बड़ा है"

आज के दौर में आदमी व्यवसाय में पड़कर मानवता के सभी उसूल तक झटके में तोड़ देता है। वह पैसा कमाने के लिए अपने परिवार जन से भी फरेब कर देता है। वह यह नहीं सोचता कि वह भी मानव है जिसके साथ अन्य लोग भी अनैतिक कार्य कर सकते हैं। इसी कारण वह कहता है –

"फिर भी मुझे ख्याल रहता है कि
पेशेवर हाथों और फटे जूतों के बीच
कहीं न कहीं एक आदमी है"

फिर कैसे मान लिया जाए कि आज साहित्य के गगन में धूमिल नाम का उग्र तारा धूमिल हो गया। नहीं, आज फिलहाल वह मूर्त नहीं है फिर भी सड़क से लेकर संसद तक वह नजर आ ही जाता हैं।आज के दौर में धूमिल कल से ज्यादा आज प्रासंगिक हैं।

प्रेम

आशुतोष चौबे
कला स्नातक हिंदी (विशेष) तृतीय वर्ष

प्रेम ज्ञान है, अभिमान है, दो दिलो का सम्मान है।
प्रेम युक्ति है, मुक्ति है, आत्मा की अनुरक्ति है।
प्रेम दीपक है, लौ है, मंडराता हुआ पतंगा है।
प्रेम नाला है, हिम है, बहती हुई गंगा है।
प्रेम वेद है, ग्रन्थ है, खुली हुई किताब है।
प्रेम नफरत है, चाहत है, मिलने को बेताब है।
प्रेम कविता है, भाषा है, साहित्य का अनुदान है।
प्रेम गुण है, अवगुण है, सबका ईमान है।
प्रेम गायन है, वादन है, बिखरा हुआ अनुशासन है।
प्रेम बेहया है, बेशर्म है, सबसे बड़ा खुदगर्ज है।
प्रेम सबका सबके ऊपर एक अज्ञात सा क़र्ज है।
प्रेम नवजात है, जवान है, बूढ़ी सी काया है।
प्रेम सत्य है, सुन्दर है, सबसे बड़ी माया है।
प्रेम कर्म है, धर्म है, दो दिलों का मर्म है।
प्रेम निर्लज्ज है, लाचार है, शर्मीलों की शर्म है।
प्रेम पूजा है, अजान है, लाल रंगी परिधान है।
प्रेम भावना है, भक्ति है, अरि से अपमान है।
प्रेम शत्रु है, मित्र है, सबको बनाने वाला है।
प्रेम नशे में पड़े व्यक्ति की सबसे बड़ी मधुशाला है।

दृश्य चिंतन

अमन प्रताप सिंह
कला स्नातक हिंदी (विशेष) तृतीय वर्ष

कला दृश्य का एक खूबसूरत चिंतन है
लिप्त है जो यथार्थ और सम्वेदना में
जिसका रस निर्मित है बेढंगे फूलों से
और चमक प्रतिबिंबित है अंधेरे की लौ से

एक प्रयास है
उस नग्नता को उकेरने का
रात में जलती सिगरेट के धुंए जैसा
उपस्थिति की ताक में है
शायद हर पहलू
लेकिन कागज में रिक्त स्थान कम शेष है

प्रश्न ये है कि पहले किसे परोसा जाए?
सत्ता की गिरगिटी तस्वीर को!
भुखमरी!
अश्लीलता के सौन्दर्यबोध को!
या फिर किसी स्वघटित प्रेम के प्रलाप को!

दृश्य चिंतन की कहानी सत्ता के लोलुपों से तय है
तो पहले सामयिक धरातल की नब्ज को टटोल ले
प्रेम का विषय तो खुद तक सीमित रह जायेगा
पर सत्ता दृश्य सार्वजनिक होने जरूरी है।

प्रेमिका के प्रेम पत्र

सार्थक दुबे
कला स्नातक हिन्दी (विशेष) द्वितीय वर्ष

स्मृतियाँ भी आकाश में विलीन हो जायेंगी
और बनायेंगी तारामण्डल
उसके स्पर्श से बनेगें अटूट और निश्चल तारे
और उसका चुम्बन लेगा ब्रह्मांड में सूर्य का रूप
और उसके आँखों का प्रकाश प्रस्फुटित होकर बनायेगा आकाशगंगा
और मैं निपट अकेला दूर से ही देखता रह जाऊँगा तुम्हारे प्रेम पत्रों को ।

फ़ौजी बनना कोई आसान बात नहीं थी।

केशव
बी.एससी. रसायन विज्ञान तृतीय वर्ष

जी हाँ, हम बदले से लगने लगे थे
क्योंकि फ़ौजी बनना कोई आसान बात नहीं थी।

चले तो ये सोचकर थे
कि नौकरी लग गई थी
अब तो हर एक समस्या
की छुट्टी हो गई थी।
पर शायद ये छोटी उम्र
धोखा कर गई थी,
जो हक़ीक़त से हमें
बहुत परे ले गई थी;
क्योंकि फ़ौजी बनना कोई आसान बात नहीं थी।

ये रेलगाड़ी घर से दूर
तो ले ही गई थी,
साथ में सुखों का मंज़र
भी छीन ले गई थी।
ये रूह घर की असीमित
सीमा छोड़ गई थी,
और नयी चारदीवारी में
जाकर फँस गई थी;
क्योंकि फ़ौजी बनना कोई आसान बात नहीं थी।

आंखें जो पहले 4 बजे
बंद हुआ करती थी
उस वक़्त अब वो
खुलने लग गई थी।
उठते ही जहां फ़ोन की
स्क्रीन हाथ आती थी,
अब पी.टी. यूनीफॉर्म
आने लग गई थी;
क्योंकि फ़ौजी बनना कोई आसान बात नहीं थी।

कभी दाढ़ी व बालों की
अपनी स्टाईल हुआ करती थी,
अब क्लीन शेव व मूँछें ही
दिल छूने लग गई थी।
कभी खूबसूरत सुन्दरियां
आकर्षित करती थी,
अब केवल राइफल ही हमारी
माशूका हो गई थी;
क्योंकि फ़ौजी बनना कोई आसान बात नहीं थी।

फटी हुई जीन्स को जो हम
फ़ैशन समझा करते थे,
वह अब जिस्मानी वर्दी में
परिवर्तित हो गई थी।
लोफर जूतों की जो
आवारगी हुआ करती थी,
वह अब सिर्फ़ एंकल बूट
बनकर रह गई थी;
क्योंकि फ़ौजी बनना कोई आसान बात नहीं थी।

जहां मोटर गाड़ी अपने साथ
कॉलेज भ्रमण कराती थी,
वह अब परेड ग्राउंड की
ख़ूबसूरती मात्र हो गई थी।
जहां कानों में माँ की
मधुर ध्वनि गूँजती थी,
अब तो वह सिर्फ
परेडतेज़ चल! हो गई थी;
क्योंकि फ़ौजी बनना कोई आसान बात नहीं थी।

जहाँ यो यो हनी सिंह की
बोली जुबां पर रहती थी,
अब चिट्ठी आयी है की बोली
शांति देने लग गई थी।
जहां सनी देओल की बॉर्डर
भावुक कर देती थी,
अब उरी में ख़ुद की
छवि दिखने लग गई थी;
क्योंकि फ़ौजी बनना कोई आसान बात नहीं थी।

दिन में दोस्तों संग घूमने की
मस्ती जो हुआ करती थी,
अब तो वह बदल कर
डे रूट मार्च हो गई थी।
नाइट आउट की अक्सर
जो प्लानिंग हुआ करती थी ,
वह नाइट रूट मार्च में
तब्दील हो गई थी;
क्योंकि फ़ौजी बनना कोई आसान बात नहीं थी।

वो राखी जो बहन अपने
हाथों से बाँधा करती थी,
वह अब स्पीड पोस्ट से
पहुंचने लग गई थी।
माँ जो कभी अपने हाथों
से खाना खिलाया करती थी,
अब मात्र एक झलक पाने
को तरस गई थी ;
क्योंकि फ़ौजी बनना कोई आसान बात नहीं थी।

होली जो कभी रंग-बिरंगे
रंगों की हुआ करती थी,
अब ख़ूनी रंग लाल
रंग की हो गई थी,
दीपों व पटाखों की
दीपावली जो होती थी,
अब बारूद व बमों की
बनकर रह गई थी;
क्योंकि फ़ौजी बनना कोई आसान बात नहीं थी।

जिन जगहों का सिर्फ
नाम भर सुनते थे,
आज वहां पोस्टिंग
होने लग गई थी।
जिस कीचड़ को देख
नाक बंद करते थे,
वही पर सज़ा-ए-फ्रंटरोल
शुरू हो गई थी;
क्योंकि फ़ौजी बनना कोई आसान बात नहीं थी।

रात भर बाहर रहने पर
भी कोई फ़िक्र ना होती थी,
अब घर छोड़ते वक़्त बार-बार
मौत आने लग गई थी।
ये रूह बच्चे की तरह
तुरंत रोने लगती थी,
अब चाहकर भी फोन पर
चुप रहने लग गई थी;
क्योंकि फ़ौजी बनना कोई आसान बात नहीं थी।

हर रिश्ता निभाने के लिए एक
इंसान की मौजूदगी होती थी,
आज साथी की मौजूदगी ही
सब कुछ हो गई थी।
जिस घर की छत के नीचे
हमारी जान होती थी,
आज वो जान उसे छोड़कर
नए घर में चली गई थी;
क्यूँकी फ़ौजी बनना कोई, आसान बात नहीं थी।

जी हाँ हम बदले से लगने लगे थे;
क्योंकि फ़ौजी बनना कोई आसान बात नहीं थी।

खुशी

श्री कृष्णा यादव
कला स्नातक हिंदी (विशेष) द्वितीय वर्ष

इतना भी मदहोश ना हो इस खुशी में
कि जानें गवां दे यूं ही बेरुखी में।

छूटेंगे गोले बारूद और तमंचे इस जश्न पर
अपना घर भी ना जला दें इस खुशी में।

किए हैं जो भी वादें अपनों से पूरा करने की
उसे भी निभाना है अभी बाकी

बिगड़ेंग-बनेंगी सरकारें बार-बार
बितायें जिंदगी के पांच साल यूं ही खुशी में।

ना है वैमनस्य किसी भी ऐसे राजनेता से
जो शपथ ले अखंड भारत की
क्योंकि हमारी खुशी भी शामिल है

इस देश की हर खुशी में।

पूर्णता

नीतेश 'प्रज्ञान',
एम.ए. (हिंदी) पूर्वार्द्ध

अपेक्षाओं और संभावनाओं में,
पूर्णता की तलाश,
आमंत्रण है रीतेपन का,
प्रेम पूर्ण इकाई है।
संबंधों का वस्तुनिष्ठ होना,
अधूरेपन का विस्तार है।

मानवता या प्रदर्शन

श्री कृष्णा यादव
कला स्नातक हिंदी (विशेष) द्वितीय वर्ष

कैसी विडंबना है इस देश की
जहां ना हो सही से कपड़े
ढ़कने के लिए तन को
ना हो कोई आसरा
रात गुजारने के लिए
जहां पड़ रहे हो लाले खाने को
भूखे सो रही हो जनता एक उम्मीद के साथ
हो सकता है कल कुछ मिले
और जिस जनता ने दिए हैं राजस्व
अपने पेट काट-काट कर
उन अपार संपत्तियों को संस्कृतियों
और भव्यता प्रदर्शित करने के नाम पर खर्च करना
जो कुछ क्षण के बाद हो जाती है गायब
उसको तवज्जो देना कितना है ज़ायज
काश! संवर सकती थीं न जाने कितने मजबूरों की जिंदगी
खड़ा हो सकते मजबूती से
जल सकते थे ना जाने कितने दीपक
उन अंधेरे घरों में
जो जलाये थे हमने बिना किसी प्रयोजन के
देते हमें कुछ ना कुछ प्रतिफल वे अवश्य
केंद्र में होने का क्या है वजूद
जो आज भी जा रहा है नाकारा
कहां का न्याय है यह हमारा
जो न बन सके दुखियों और असहायों का सहारा।

अतीत

अंतरिक्ष श्रीवास्तव
कला स्नातक हिंदी (विशेष) द्वितीय वर्ष

मैं झट पट उठा और सुबह की नींद को अपनी
उंगलियो से मसल कर भगाने लगा
उस सुबह की पहली किरण जैसे बाबू की
विदाई का समाचार दे रही हो
उनकी साँसे पहाड़ी इलाके में आए किसी बर्फीले तूफान की सनसनाहट सी थी
बायें हाँथ की रक्त धमनियों को अपनी चाल
से तेज़ चलने का अनुभव कर रहा था
और मस्तक पर नाक की सीध में हरी धमनियों में कुछ कहने की बैचेनी को पढ़ रहा था
असहनीय दृश्य ने मेरी आँखों के अंदर की पीड़ा को अश्रुधारा के रूप में बाहर निकाला
तब मेरा ध्यान परिवार की विभिन्न दशाओं पर गया जिन्हें मैंने आज तक नही देखा था
ये तबाही मेरे जीवन में नागासाकी और हिरोशिमा के परमाणु विस्फोट से कम नहीं थीं
क्योंकि चले गए थे उनके भी आगामी स्वप्न
बाबू के चले जाने के बाद
मन तो हुआ मैं भी एक पत्र लिखूं लेन्चो
की तरह उस ईश्वर को
पारिवारिक मदद का नही बल्कि उपहार में
पिता स्वरूप बड़े भाई के होने का।
जो अकेले ही लड़ते रहे जीवन की कठिनाइयों से
जैसे लड़ता है हर रोज़ हिमालय बर्फीली आँधियों से,
कर लूंगा सपनो को पूरा अपने
आशा ही नहीं विश्वास भी है,
निरंतर बढ़ता रहूंगा अपने पथ पर
बची जब तक शरीर में एक सांस भी है।
अगर भूल गया मैं अपने पिछले वक्त को
एक भाई द्वारा निभाये अपने कर्तव्य को
उठाना पड़ जाएगा उन्हें बोझ
जीवन भर मेरी गद्दारी का
मिल जायेगी सजा एक भाई को
उसकी समझदारी का।

मेरी आशाएं

मिनल ठवरे
कला स्नातक द्वितीय वर्ष

आशा है एक आशा है,
बचपन की एक आशा है,
आशा है कुछ कर दिखलाने की,
पत्थर को स्वर्ण बनाने की,
सागर से मोती को लाने की,
खुद के पंख लहराने की,
आशा है मेरी आशा है।

कुछ अपनी है कुछ मां पापा की,करना जिसको पूरी है ,
काटों पर चलकर खिलना है,
जुगनू की तरह चमकना है ,
धरती को रोशन करना है ,
सबसे परे निकलना है,
आशा है मेरी आशा है।

आशा हो तो ऐसी हो जिसमें,
निराशा की कभी बात न हो ,
हर क्षण आशा ही आशा हो,
ज्ञान का दीपक जलाने वाली हो ,
संसार की कटुता हटाने वाली हो,
आशा है मेरी आशा है।

कण- कण में स्नेह व्याप्त हो ,
हर पल खुशी का रंग प्राप्त हो,
न नफरत हो न युद्ध हो,
बस अनुराग के स्वर की पुकार हो,
आशा है एक आशा है,
बचपन की मेरी एक आशा है।

मां तुम बहुत याद आती हो।

हर्षिता अग्रवाल
बी.एससी. भौतिक विज्ञान (विशेष) द्वितीय वर्ष

मां तुम बहुत याद आती हो।

झगड़ आती हूं किसी से भी
लेकिन कोई समझाने वाला और मनाने वाला नहीं होता।

बीमार पड़ने से भी कोई फायदा नहीं है यहां
कोई ख्याल ही नहीं रखता।
तुम साथ हो तो बीमारी बोझ नहीं लगती
अरसों से वो बचपन वाली बुखार नहीं चढ़ता
जब तुम दिन भर नए नए उपाय ढूंढ लेती थी
और दो दिन में मेरे बेजान शरीर में जान फूंक देती थी.

तुम साथ तो कोई फ़िक्र नहीं सताती,
तुम दूर हो तो अब हर बात फोन पर नहीं कही जाती,
क्योंकि तुम डर जाती हो, घबरा जाती हो,
किसी को कहती नहीं पर अंदर से टूट जाती हो।

तुम यहां नहीं हो तो कोई नहीं टोकता,
कब आओ कब जाओ कुछ खाओ या भूखे सो जाओ कोई भी नहीं सोचता,
कोई भी ठंडा पानी पीने से नहीं रोकता,
मेरी छोटी छोटी नादानियों को कोई नहीं देखता।

क्योंकि सब के पास कुछ काम है, सब व्यस्त है।
एक तुम ही तो हो जो व्यस्तता के क्षणों में भी मेरी आवाज़ से सब पहचान जाती हो।
मेरे हर गुस्से का कारण मेरी भूख को बताती हो,
ऐसा कह कर तुम मुझे ज्यादा खाना खिलाती हो,
प्यार से थपथपा कर अपनी गोद में सुलाती हो,
अदरक वाली चाय से नींद को उड़ाती हो,
प्यार के इस तेज से गुस्से को भगाती हो।

लेकिन सिर्फ मुझे समझाती रहती हो,
खुद हमेशा ज्यादा चीनी खाती रहती हो,
कहती हो की भूख सही नहीं जाती,
कभी पापा के लिए तो कभी हमारे लिए दिन भर भूखी रह जाती हो।

खुद दवाइयां नहीं लेती हो वक्त पर
मुझे दवाइयां फोन कर के याद दिलाती हो,
मै बीमार हूं तो मुझे बिस्तर से उठने नहीं देती,
खुद बीमार हो तो भी पूरे घर में चक्कर लगाती हो।

सौ दुख होंगे तुम्हारी ज़िन्दगी में,
लेकिन सिर्फ मुझे हंसता देख तुम खिलखिला जाती हो।

क्यों यूं मुस्कुरा जाती हो?
कहां से इस हृदय में प्रेम के साथ त्याग ले आती हो?
कैसे बिना कुछ कहने पर भी सब जान जाती हो?
तुम शायद सभी के लिए कुछ भी नहीं हो
लेकिन मेरे लिए मेरी प्रेरणा हो,
मेरी प्रतिस्पर्धा हो,
मेरा हौसला हो,
मेरी जीत हो, मेरी हार हो,
मेरी खुशी हो,
मेरी कविता हो,
मेरी भावनाएं, अल्फ़ाज़ और आवाज़ हो,
मै, मैं हूं ही नहीं,
सिर्फ नाक नक़्शा एक जैसा नहीं है हमारा,
मेरे अंतर से ज़्यादा बाहर धड़कता है मेरा दिल,
क्योंकि ये तुम्हारे आस पास धड़कता है।

तुम घर में नहीं हो, घर तुमसे है, घर तुम ही हो,
तुम आईना हो, तुम में खुद को देखती हूं।
तुम दुनिया हो मेरी,
तुम सब सब सब कुछ हो मेरा।

हक़ीक़त

प्रज्ञा गंभीर
बी. एससी. रसायन विज्ञान प्रथम वर्ष

रोज़ ही उन रास्तों से मैं गुज़रती थी
रोज़ कुछ चीजों को अनदेखा कर शाम ढलती थी।
उस राह से कुछ मोहब्बत सी हो गयी थी।
उस ढलती शाम की आदत सी हो गयी थी।
वो दिन शायद खुदा ने बड़ी फ़ुर्सत में लिखा था,
अचानक नया सा

एक चेहरा दिखा था।
आँखें नम थी, सिसकियाँ भर रहा था।
तन्हा बेसहारा, कुछ खुद में घुट रहा था।
उसके आँसूं मुझसे उसका हर गम कह गये,
ज़रूर बात कुछ बड़ी थी, जो वो यूँ बह गये।
आँसू पोंछ उसके पास जा बैठी।
उसकी बातों में खुद को खो बैठी।

हर मुमकिन कोशिश थी,
कि उसके चेहरे पर वो मुस्कान लौट आए।
जो गुम हो गयी तन्हाई में
वो मासूमियत लौट आएं।
रोज़ ढलती शाम, उसका साथ और बातें हज़ार होती थी।
उसकी हल्की मुस्कुराहट भी मेरे लिए बहार होती थी।

दिन दोपहर शाम या रातें,
हर वक़्त बस उसकी ही बातें,
उसके साथ देख मुझे, मेरी सहेलियाँ ताने मरती थीं।
आखिर हमारी दोस्ती को वो न समझती न जानती थी।

कुछ वो कहता, कुछ मैं भी,
हर कही बात याद है आज भी,
बात करते करते कब रात हो जाती थी।
पता ही नही चलता था, कब मैं सो जाती थी।

वो चुप चाप चला जाता था।
कभी रोक ही नहीं पाती थी उसे
आखिर रोकने का क्या हक़ था मुझे?

कई दिन, महीने, बीत गए कई साल,
बस उसके चेहरे से जान जाती थी हाल,
मुस्कुराहट हल्की हल्की थी, बढ़ने लगी,
पर तन्हाई उसकी कि घटती नहीं,
उस रात दिल शायद समझ गया था,
इस बार वो गया तो लौट कर न आएगा,
ये रास्ता उसे बहुत दूर ले जाएगा।

दौड़ कर उसकी ओर गयी,
'सारे गम हर तन्हाई को मिटाना है
हाथ थाम लो मिरा, अभी बहुत दूर तक जाना है।'
फिर क्या होना था, हकीकत समझ आयी,
मेरी मुस्कुराहट में उसे नई ज़िन्दगी नज़र आयी,
मैनें भी जाना, मोहब्बत न उन राहों से थी,
न ही उस ढलती शाम से,
मोहब्बत हो गयी थी, उस शख्स बेनाम से।

हिन्दगी है जिन्दगी

नितेश कुमार पाण्डेय
कला स्नातक हिंदी (विशेष) प्रथम वर्ष

उत्थानों के परम् शिखर पर चढ़ती जाती
फिर हिंदगी कहलाती हूँ,
चैतरफा दबावों के बीच भी मैं
हर कसौटियों पर उतर जाती हूँ।

साहित्य की संबद्धता का प्रतिमान कहलाती
मानव को संवेदनशील बनाती हूँ,
समाज के जटिल ताने-बाने संरचित कर मैं
प्रगतिशीलता धारण कराती हूँ।

रूढ़िवाद और स्थितिवाद का खंडन कर मैं
एकता का पाठ पढ़ाती हूँ,
एकसूत्र में राष्ट्र को बाँधें
वांछनीय परिवर्तन करती जाती हूँ।

समाज का तटस्थ दर्पण कहलाती हूँ
भारत-भारती और कामायनी जैसी रचना देकर,
पराधीनता के इस युग में भी
क्रांति का आह्वान कराती हूँ।

आदर्श समाज के निर्माण हेतु मैं
प्रतिमान उपलब्ध कराती हूँ,
संक्रमण के दौर में भी
समाज को चेतनशील बनाती हूँ।

विसंगति का जब दौर आया तो
कबीर तुलसी ने हिंदी का गुणगान किया
तब सूर और मीरा ने भी
हिंदगी का रसपान किया।

नैतिकता के पतन का दौर चला तो
भूषण और गिरिधर ने मेरा ध्यान किया
तो रहीम रसखान केशव ने भी
भक्तियुग का पुनः आह्वान किया।

कला,संस्कृति, इतिहास को संरक्षित करती
विरासत की रक्षक सिद्ध होती हूँ
मेरे अस्तित्व का सवाल उठा तब
रामचंद्र को दिव्य-दृष्टि मैं देती हूँ।

दुनिया सारी देख रही है
हिन्द देश की ये हुंकार
विश्व पटल पर गूंज रहा है
जय हिंदी जय हिंदी का नारा।

हमने यह संकल्प लिया है
भारत माँ का मान बढाएंगे
जिस भाषा ने हमको सम्पन्न किया है
उसे ही राष्ट्रभाषा हम बनाएंगे।

सर्वश्रेष्ठ है हिंदी अपनी
हिंदगी को ज़िंदगी बनाएंगे
जीवन-आधार बनाकर इसे हम
भारत को जगद्गुरु बनाएंगे।

कौन हूँ मैं ?

नितेश कुमार पाण्डेय
कला स्नातक हिंदी (विशेष) प्रथम वर्ष

हंसराज हूँ मैं
क्या अब अनजान हूँ मै
ये मत भूलो तुम गौरवशाली इतिहास हूँ मैं
इस देश की शान हूँ मैं

सात दशकों का इतिहास हूँ मैं
अभिनेताओं की फैक्ट्री, कवियों की शान हूँ मैं
नेताओं की जन्मभूमि
छात्रसंघ का अभिमान हूँ मैं

माँ सरस्वती का गृहवास हूँ मैं
महात्मा हंसराज की संतान हूँ मैं
दिल्ली विश्वविद्यालय का शाह हूँ मैं
शाहरुख खान ,अनुराग कश्यप ,नवीन जिंदल
ऐसे तमाम सितारों का जन्मदाता हूँ मैं

लाखों छात्रों का भविष्य
सपनों का आसमां हूँ मैं
इस मिट्टी से दुनिया में
प्रतिभाओं की धारा बहाता हूँ मैं

विभिन्न क्षेत्रों में शिक्षा प्रदान करने वाला हूँ मैं
उच्च योग्य शिक्षाविदों के साथ
साहित्यिक, सांस्कृतिक और खेल गतिविधियों में
उत्कृष्ट प्रदर्शन के लिए एक प्रतिष्ठा प्राप्त करता हूँ मैं

विज्ञान, वाणिज्य और कला में
देश के शीर्ष दस कॉलेजों के बीच
नियत किया गया हूँ मैं
पारंपरिक भारतीय मूल्यों को सुनिश्चित करता हूँ मैं

शरीर, मन और आत्मा का
पूर्ण विकास सुनिश्चित करता हूँ मैं

स्थानीय स्तर पर और विश्व स्तर पर
विस्तार और खोज जारी रखता हूँ मैं

एक ज्ञान नेता और सामग्री प्रदाता हूँ मैं
ज्ञान, संस्कृति, कौशल, प्रौद्योगिकी,अनुसंधान और सेवा का
वैश्विक उपरिकेंद्र बनने के लिए
रणनीति तैयार करता हूँ मैं

शिक्षा के माध्यम से महिलाओं को सशक्त बनाता हूँ मैं,
सांस्कृतिक मेलों के लिए
ज्ञान प्रदान के लिए
समग्र शिक्षा प्रदान करता हूँ मैं

शिक्षा के प्रसार द्वार
परिवर्तन के उत्प्रेरक के रूप में कार्य करता हूँ मैं
अज्ञानता और अशिक्षा के
कोबवे को दूर करता हूँ मैं

जो नैतिक रूप से ईमानदार है
मानसिक रूप से अच्छी तरह से हो विकसित
और सांस्कृतिक रूप से निपुण हैं
ऐसे व्यक्तियों का विकास करता हूँ मैं

अंधविश्वासों और बाल विवाह
जाति प्रथा, कन्या भ्रूण हत्या, दहेज प्रथा
लिंग पक्षपात, क्षेत्रवाद आदि जैसे
अंधविश्वासों के खिलाफ धर्मयुद्ध करता हूँ मैं

सामाजिक कल्याण के प्रति
व्यक्तियों को संवेदनशील बनाता हूँ मैं
राष्ट्र और समाज के कमजोर वर्गों की
देखभाल करता हूँ मैं
कौन हूँ मैं तेरा, वह हंसराज हूँ मैं।

नारी की पूजा

कीर्ति कश्यप 'तेजस'
बी.एससी. रसायन विज्ञान प्रथम वर्ष

आज क्षितिज से फिर पृथ्वी पर अग्निशिरा छूटा है
महाप्रलय लाने को मानो जैसे कोई अम्बर टूटा है।

कुरुओं की भरी सभा में याज्ञसेनी न्याय न्याय चिल्लाती है
आर्यों को लज्जित देख हार कान्हा को आवाज़ लगाती है।

कृष्णा की पुकार सुनकर तब कृष्ण स्वयं ही आते हैं
ज़ख्म की पट्टी के हर धागे का ऋण आज चुकाते हैं।

खुले केश रक्तिम आभा प्रतिशोध की ज्वाला दहक रही
वस्त्र समेटे कल्याणी कुरुओं की सभा में बिलक रही।

भीष्म, द्रोण, कृप, विदुर समेत धृतराष्ट्र मौन रह जाते हैं
कुल की मर्यादा को जब बाहरी वेश्या कह कर बुलाते हैं।

न्याय की आशा छोड़ो तेरे अपने सारे झुके हुए हैं
कुरुओं की राज्य सभा के सारे मस्तक बिके हुए हैं।

शीश उठाओ कल्याणी तेरे चरित्र का उत्थान हुआ है
लज्जित धूमिल तो आज कुरुवंश का नाम हुआ है।

वीर भवानी का खप्पर ले जागो हे महारानी तुम
अपनी रक्षा करने को आओ फिर हे समरागिनी तुम।

शब्दों के बाणों को छोड़ काली को फिर खड्ग उठाने दो
पापियों के सर्वनाश के लिए फिर महासमर ठन जाने दो।

इतिहास गवाही देता जब भी नारी का अपमान होता है
हर बार महासमर में तब मृत्यु का ताण्डव होता है।

पुरुषों से आशा छोड़ो ये खुद को हार जायेंगे
जो खुद को नहीं बचा सकते वो क्या तुझको बचाएंगे।

नारी को लज्जित होता देख न कभी मौन तुम रहना
नारी गृहस्थ की आभा है नारी भारत का है गहना।

आओ फिर प्रण ले कि नारी को अपमान न सहने देंगे
जो करें नारी का अपमान उसे दुनिया में न रहने देंगे।

आशा करो पूरी मेरी अब तेरा ध्यान मैं धरता हूँ
अपनी रक्षा की आशा भी अब तुझसे मैं करता हूँ।

धर्म

ऋषभ शर्मा
कला स्नातक हिन्दी (विशेष) प्रथम वर्ष

मस्जिद की नींव रखकर मंदिर में ईंट लगता है
वो एक ही कारीगर है जो मंदिर-मस्जिद बनाता है।

हिंदुस्तान को सम्प्रदायों में बांटने वालों सुन लो तुम
वो ही दर्जी ख़ुदा की चादर, भगवान के वस्त्र बनाता है।

एक कहता है धर्म, एक इसे दीन कहता है
कोई इसे कहता हिन्दू, कोई मुसलमान कहता है।

दोनों धर्मों के लोगों में भ्रम फैलाने वाले सुनो
कोई उसे ही अल्लाह, कोई भगवान कहता है।

मुस्लिम कहे रहीम, हिन्दू राम नाम जपता है
हिन्दू गाते हैं भजन, मुसलमान अजान सुनाते हैं।

दोनों धर्मों के ग्रंथों में अंतर नाम का ही होता है
वरना कोई इसे गीता और कोई इसे क़ुरान कहता है।

राजनीति

कीर्ति कश्यप 'तेजस'
बी.एससी. रसायन विज्ञान प्रथमवर्ष

ज़मीन जल चुकी है, आसमान बाकी है
सूखे हुए कुएँ तुम्हारा इम्तिहान बाकी है।

वक़्त आने पर तुम सूखी जमीन पे बरसना जरूर ऐ मेघ,
किसी का मकान गिरवी है किसी का लगान बाकी है।

कल किसी ने गरीब के तन पर अपना चदर डाल दिया,
इंसान में अभी भी थोड़ा और इंसान बाकी है।

समय खुद ही भर देता है हर एक जख़्म को,
मेरे तन पर हर एक जख़्म का निशान बाकी है।

किसी की जबां कटी, किसी का कलम बिक गयी,
मैं न झुका, मुझमें अब भी ईमान बाकी है।

नए ज़माने की रौशनी से जगमगा रहा है पूरा शहर,
नई रौशनी की ज़द से मेरा मकां बाकी है।

सितमगरों के सितम खत्म कहा होते हैं,
आत्मा मर गई है फ़िर भी जान बाकी है।

राजनीति ने हमें जातियों में बाटा है बहुत,
इमाम-ए-हिंद से ये हिन्दुस्तान बाकी है।

यहाँ सब कुछ बिकता है।

राम प्रवीश कुमार
कला स्नातक संस्कृत (विशेष)

यहाँ सब कुछ बिकता है।
दोस्तों रहना जरा संभाल के
बेचने वाले हवा भी बेच देते हैं
गुब्बारों में डाल के सच बिकता है

झूठ बिकता है
बिकती है हर कहानी
तीनों लोक में फैला है
फिर भी बिकता है

बोतल में पानी
अब बिक रहा है चाँद
कही गगन बिक न जाये
डर है कही आने वाले दिन में
सूरज की तपन न बिक जाये
कभी फूलों की तरह मत जीना
जिस दिन खिलोगे
टूट कर बिखर जाओगे
जीना है तो
पत्थर की तरह जियो
जिस दिन तराशे गए
भगवान बन जाओगे.

बंद कर दिया सांपों को सपेरे ने यह कहकर
अब इंसान ही इंसान को डसने के काम आएगा।

आत्महत्या कर ली गिरगिट ने सुसाइड नोट छोडकर
अब इंसान से ज्यादा मैं रंग नहीं बदल सकता!

गिद्ध भी कहीं चले गए
लगता है उन्होंने देख लिया
कि इंसान हमसे अच्छा नोचता है!

कुत्ते कोमा में चले गए
ये देखकर
क्या मस्त तलवे चाटता है इंसान!

कोई टोपी
तो कोई अपनी पगड़ी बेच देता है
मिले अगर भाव अच्छा
जज भी कुर्सी बेच देता है।

जला दी जाती है ससुराल में अक्सर वह बेटी
जिसकी खातिर बाप किडनी बेच देता है।

ये कलयुग है
कोई भी चीज़ नामुमकिन नहीं इसमें
कली, फल, फूल, पेड़, पौधे सब माली बेच देता है।

धन से बेशक गरीब रहो
पर दिल से रहना धनवान
अक्सर झोपड़ी पे लिखा होता है सुस्वागतम
और महल वाले लिखते हैं
कुत्तों से सावधान।

हिंसा

पुष्पेन्द्र सिंह
कला स्नातक हिन्दी प्रथम वर्ष

जली ये आग सियासत की तो
हर साख राख कर गयी
मिली नही छांव इंसानियत की तो
ये धरती बिलक कर रह गयी।
जले जो इंसान तो
हवा कहर कर गयी।
लड़े जो रक्त-रक्त तो
पानी जहर कर गये।
उठी जो धूल हिंसा की तो
ये तिरंगा धूमिल कर गया।
उठी जो धर्मवाद की भावना
तो कौन भगवा तो कौन हरा!
रह गये गर
जीवित होते वो लोग
तो दुःखी बहुत होते
जो हम सब हैं भाई-भाई ऐसा कह गये।

डर लगता है

कुमार मंगलम
कला स्नातक हिन्दी, प्रथम वर्ष

मैं मौत से नहीं घबराता
मुझे यह मालूम है कि
पृथ्वी पर बस अब यही
एक सत्य है मेरे लिए

हां मगर चाहता हूं कि
उठाया जाए मेरे शव को
किन्हीं चार कंधे पर
किसी घाट तक पहुंचाया जाए
और किया जाए अंतिम संस्कार
मेरे रिश्तेदारों के आंखों से फूटे
कुछ दिनों तक मोतियां

और फिर किसी बरामदे के दीवार पर
टंगी हो मुस्कराती तस्वीर
जिसे देख मेरी पीढ़ियां
कर लिया करें मुझे याद.....

लेकिन मुझे डर लगता है कि
मुझे किसी बीच चौराहे पर
उड़ा दिया जाएगा बम से
एक बड़े से भीड़ में
जहां सारे सांप्रदायिक खून
जाकर मिल जाएंगे एक दूसरे के
फटे-चीथड़े गुर्दे में ....
जहां कठिन होगा पहचान पाना
मेरे मस्तक का तिलक या
मेरे जले हुए जनेउ का अस्तित्व
मेरे लहूलुहान चेहरे से नहीं लगेगा
दाढ़ी के आयतन का हिसाब
मेरे फटे सर से बाहर
आ गयी होगी संप्रदायिक खोपड़ी
इसमें कुछ लोग खोज रहे होंगे
बड़े बाल, तुर्की टोपी या फिर पगड़ी....

अपना मतलब नहीं मिल पाने पर
सब मुझे छोड़ जाएंगे वहीं
फिर मेरे शव पर मुतेगा कुत्ता
मारे जाएंगे परिंदों के चोंच
चाटेगा कोई सियार-हुराड़
लग जाएंगे उसमें फंगस....
और फिर कोई सरकारी कर्मचारी
मेरे असंप्रदायिक बदबू से परेशान
उठा फेंकेगा मुझे सरकारी नाले में

मैं मृत्यु के बाद भी गंदगियों में बहते रहूंगा
मुझे नसीब नहीं होगा ताबूत
श्मशान या अंतिम संस्कार
मेरा परिवार कर रहा होगा इंतजार
और मैं भी उनका
उसी गंदे नाले में

डर लगता है मुझे
तुम्हें नहीं लगता ?

बढ़ती शिक्षा की भरपाई

शैलेन्द्र गुप्ता
कला स्नातक हिन्दी (विशेष) द्वितीय वर्ष

एक लड़का
उम्र महज दस या बारह
अक्सर व्याकुल पर स्थिर सा
दिख जाता उसी जगह रोज
जहाँ आज है ।

उसके साथ कुछ पर्चे भी है
जिसे देने को है वो व्याकुल
थमा दिया उसने मुझको भी
जो था किसी कोचिंग संस्था का।

मैं रुककर बोला
क्या तू नहीं चाहता पढ़ना?
जो खड़ा रहता
देकर यहाँ धरना।

वह बोला
सोचने से सब होता है अगर
हाँ तो मैं पढ़ना चाहता हूँ
मैंने नाना उद्धरण
उसको दे डाले
इनको देखो ,उनको देखो
रच दिया इतिहास।

व्यंग्य करते बोला
अगर ऐसा है तो पप्पू
हर बार फेल क्यों हो जाता है
मैंने कहा किस्मत ख़राब है
तो बोला – मेरे पास किस्मत भी नहीं
जो खराब हो।

मैन कहा
तात्पर्य क्या है
कहने का!

बोला कुछ पाने के लिए
कुछ खोना पड़ता
मेरे पास खोने के लिए एक
एक कलम भी नहीं है।

फिर कैसे जाऊं?
उन स्कूलों में
जहाँ कई वस्तुएं
लगती है वो भी उसी की।

ज्ञान के लिए करनी पड़ती है
ये पर्चे वालों की कोचिंग
इसलिए मैं सीधे इनका प्रचारक बन गया
वेतन भी मिलता है खाने को
फुटपाथ है सो जाने को
और क्या चाहिए रात बिताने को?

kalakriti

संस्कृतम्

संपादकः

डॉ. सन्ध्या राठौर

विध्यार्थिसम्पादकदलम्

मधुमाला
पवन कुमार शर्मा

विषयानुक्रमणिका

1)	पश्चिमदेशे अभिज्ञानशाकुन्तलस्य प्रभावः – मधुमाला	31
2)	संस्कृतसाहित्ये पत्रकारिता – राहुल कुमार	32
3)	'शोर-मन्दिरम्' भारतस्य कलायाः गौरवम् – लक्ष्मण कुमार	33
4)	सरस्वती-वन्दना – अनुश्रुत	33
5)	अहिंसा परमो धर्मः – शशिकान्त मिश्र	34
6)	विद्यार्थिजीवनम् – लक्ष्मण कुमार	35
7)	सुभाषचन्द्रबोसः – अभिषेक शर्मा	36
8)	श्रीमद्भगवद्गीतायाः वैशिष्ट्यम् – रोशनी	36
9)	पितरौ – तरुण चाण्डक	37
10)	पर्यावरण-प्रदूषणम् – अंकुश कुमार	38
11)	दूरदर्शनम् – साक्षी चौधरी	39
12)	जन्मदिवसे प्रधानमन्त्रिणं प्रति पत्रम् – तरुण चाण्डक	39
13)	साक्षरतायाः महत्त्वम् – ज्योति पाण्डे	40
14)	भारतस्य राष्ट्रध्वजः – आर्यन	40
15)	संस्कृतभाषायाः महत्त्वम् – आदित्य सिंह	41
16)	महान् कूटनीतिज्ञः चाणक्यः – शिवानी चौहान	41
17)	संगणकस्य उपयोगित्वम् – पवन कुमार शर्मा	42
18)	गङ्गा – तान्या महाजन	43
19)	नष्टः अन्नपूर्णो घटः – काजल	44
20)	त्रयो धूर्ताः – स्मृति	45
21)	मानवजीवने आत्मानुशासनस्य महत्त्वम् – प्रिया	46
22)	शठे शाठ्यं समाचरेत् – अंकित	47
23)	हकारविसर्गयोः कः भेदः – सारांश आर्य	48

सम्पादकीयम्—पश्चिमदेशे अभिज्ञानशाकुन्तलस्य प्रभावः

मधुमाला
एम.ए. संस्कृत पूर्वार्द्ध

नरत्वं दुर्लभं लोके विद्या तत्र सुदुर्लभा।
कवित्वं दुर्लभं तत्र शक्तिस्तत्र सुदुर्लभा। (अग्नि पुराण)

शक्तिः किम्- शक्तिः कवित्वबीजरूपः संस्कारविशेषः यां विना काव्यं न प्रसरेत् प्रसृतं वा उपहसनीयं स्यात्। सर्वेषां काव्यशास्त्रिणां मतं वर्तते यत् महाकविः कालिदासः एव सः कवि यः शक्तिसम्पन्नः। न केवलं भारते अपितु सम्पूर्णविश्वे जनाः अङ्गीकुर्वन्ति। तस्य एका रचना वर्तते- अभिज्ञानशाकुन्तलम् इति तस्य विषये उक्तञ्च-

काव्येषु नाटकं रम्यं तत्र रम्या शकुन्तला।

जर्मनदेशीयाः महाकवि : गेटे अभिज्ञानशाकुन्तलविषये तु एवं वदति-

वासन्तं कुसुमं फलञ्च युगपद् ग्रीष्मस्य सर्वं च यद्
यच्चान्यन्मनसो रसायनमतः सन्तर्पणं मोहनम्।
एकीभूतमभूतपूर्वमथवा स्वर्गलोकभूलोकयोः
ऐश्वर्यं यदि वाञ्छसि प्रियसखे! शाकुन्तलं सेव्यताम्।।

1789 तमे वर्षे सर्वप्रथमम् अभिज्ञानशाकुन्तलम् इत्यस्य नाटकस्य आंग्लानुवादः विलियमजोन्समहाभागेन कृतः। तदनन्तरं सकलेषु पश्चिमदेशेषु अभिज्ञानशाकुन्तलस्य बृहत्तरं प्रचारं प्रसारम् चाभवत्। पुनः चार्ल्सविल्किंसमहोदयेन अपि आंग्लभाषायां तस्य अनुवादः कृतः।

ततः परं जर्मनभाषायाः जार्जफॉस्टरमहोदयः अभिज्ञानशाकुन्तलम् इत्यस्य नाटकस्यानुवादं कृतवान्। अथ च चेजीमहोदयेन अपि फ्रेंचभाषायां अस्य नाटकस्य अनुवादः कृतः। विलियमजोन्समहोदयात् परं द्वादशभाषासु षट्चत्वारिंशत् अनुवादाः अभवन्। अभिज्ञानशाकुन्तलस्य एतावन्तं महिमानं दृष्ट्वा जर्मनदेशीयः कविः हर्डरः अवदत् यत् अभिज्ञानशाकुन्तलसदृशं काव्यं सहस्रवर्षेषु एकवारमेव विरचितं भवति। जर्मनदेशीयः हम्बोलटमहोदयः वदति कालिदासः एव सः कवि यः सहृदयस्य मनसि प्रकृतेः प्रभावः दर्शयति।

संस्कृतसाहित्ये पत्रकारिता

राहुल कुमार
एम.ए. संस्कृत पूर्वार्द्ध

पत्रकारिता समाजस्य दर्पणो भवति। यस्मिन् दर्पणे समाजे जायमानाः सर्वेऽपि क्रियाकलापाः अवलोक्यन्ते। समाजस्य विविधक्षेत्राणां सर्वविधवृत्तं यथा क्रीडा-राजनीति-चलचित्र-व्यापार-आविष्काराः इत्यादयः दृश्यन्ते। समसामयिकघटनाचक्राणां शीघ्रतया लिखितेतिहासः पत्रकारितोच्यते।

आधुनिकसमाजे पत्रकारितायाः उद्भवः चतुर्दशशताब्द्याम् अभवद् इति मन्यन्ते। परम् अस्याः उद्भवः तु वैदिककाले बभूव। यतोहि वेदः समस्तशास्त्राणां मूलस्रोतः वर्तते। अतः पत्रकारिताशास्त्रस्यापि उद्गमस्रोतः वेद एव अस्ति। ऋग्वेदस्य दशममण्डलस्य सरमापणिसंवादसूक्ते प्रथमवारं निष्पक्षपत्रकारिता दृष्टा। तस्मिन् सूक्ते पणयः सरमां स्वपक्षे कर्तुं प्रलोभनं ददुः। किन्तु सा जगाद 'नाहं वेद भ्रातृत्वं न स्वसृत्वम्' अर्थात् सूचनाप्रसारणकर्त्तव्ये सा कमपि जनं न परिचिनोति। सा कमपि प्रलोभनमपि न इच्छति।

पौराणिककालेऽपि नारदमुनिरपि एकः पत्रकारः एव आसीत्। तस्य पार्श्वे समस्तजगति जायमानानां घटनानां सूचनाः भवन्ति स्म। स्वर्गलोके भवतु मर्त्यलोके भवतु वा तेन किमपि अदृष्टं नासीत्। देवतानां विविधाः अवताराः तस्य ज्ञातविषयाः आसन्। शिशुपालवधमहाकाव्ये शिशुपालः हन्तव्यः इति सूचना तेन एव प्रदत्ता।

महाभारतेऽपि सञ्जयः धृतराष्ट्रस्य अनुचरः तु आसीदेव किन्तु सः एकः पत्रकारोऽपि आसीत्। सः निष्पक्षतया महाभारतस्य युद्धस्य वृत्तान्तं श्रावितवान्। तेन माध्यमेन एव धृतराष्ट्रेन प्रासादे स्थित्वा युद्धे जायमानाः सर्वाः घटनाः विदिताः।

साम्प्रतं पेड-मीडिया इति वित्तपोषितपत्रकारितायाः युगे अस्माभिः संस्कृतसाहित्ये वर्णिताः सरमा-नारदमुनि-सञ्जयादयः अनुकरणीयाः।

'शोर-मन्दिरम्' भारतस्य कलायाः गौरवम्

लक्ष्मण कुमार
बी.ए. संस्कृत (विशेष) तृतीय वर्ष

'शोर-मन्दिरम्' दक्षिणभारतस्य प्राचीनतमः देवालयः अस्ति। एतत् मन्दिरं भारतस्य तमिलनाडुराज्यस्य महाबलीपुरम् इति स्थाने अस्ति। अस्य मन्दिरस्य निर्माणम् अष्टतमे शतके पल्लव-राजवंशस्य नृपः नरसिंहवर्मा अकारयत्। एतत् मन्दिरं द्रविड-वास्तुकलायाः सर्वोत्तमम् उदाहरणम् अस्ति। अस्य मन्दिरस्य परिसरे त्रीणि मन्दिराणि सन्ति। येषु मन्दिरेषु मध्यगतं मन्दिरं विष्णोः देवस्य अस्ति, यम् उभयतः शिवस्य द्वे मन्दिरे स्तः।

अस्य देवालयस्य परिसरः अतीव मनोहरः अस्ति। यदा समुद्रतरङ्गैः मन्दिरं स्पृश्यते तदा अद्भुतम् अलौकिकं दृश्यं दृश्यते। शोरमन्दिरम्, "यूनेस्को-विश्व-विरासत-स्थल" इति रूपेण अपि वर्गीकृतम् अस्ति।

अतः "शोर-मन्दिरम्" भारतवर्षस्य प्राचीनतमवास्तुकलायाः सर्वोत्तमम् उदाहरणम् अस्ति। एतत् मन्दिरं सर्वेषु शिलामन्दिरेषु प्राचीनतमम् अस्ति, यत् स्वकलावैशिष्ट्येन भारतस्य कलायाः गौरवं प्रदर्शयति।

सरस्वती-वन्दना

अनुश्रुत
एम.ए. संस्कृत, पूर्वार्द्ध

हे देवि कुर्मो वन्दनं वागीश्वरी ते वन्दनम्।
मम वाचि तिष्ठ महीयसी कुर्मो वयं तव वन्दनम्।।
सत्यं गदेयं सर्वदा तथ्यं वदेयं सर्वदा।
पथ्यं प्रिय मधुरं मुदा कथ्यं कथेयं सर्वदा।।
जनतापपापनिवारिणीं सरलां सदा हितकारिणीम्।
कवितां सदा कुर्याम वै ममका सदा अघमर्षणम्।।
मम भारतं ननु भारतं प्रतिभायुतं मतिभासकम्।
गोद्विज सुवेद सुखप्रदं प्रवहेत् सदा सुखवर्षणम्।।
कविता तु सैव सुखावहा कनुकन्तिदा यशदायिका।
आनन्दशान्तियुता वयं कुर्याम सर्वं मङ्गलम्।।

अहिंसा परमो धर्मः

शशिकान्त मिश्र
बी.ए. संस्कृत (विशेष) तृतीय वर्ष

हिंसनं हिंसेति। कस्यापि पीडनं दुःखदानं वा हिंसेति कथ्यते। हिंसा त्रिविधा भवति- मनसा, वाचा, कर्मणा च। मनुष्यो यदि कस्यचित् जनस्य अशुभं हानिं वा चिन्तयति, सा मानिसिकी हिंसा वर्तते। यदि कठोरभाषणेन, कटुप्रलापेन, दुर्वचनेन, असत्यभाषणेन वा कमपि दुःखितं करोति, तर्हि सा वाचिकी हिंसा भवति। एतासां तिसृणां हिंसानां परित्यागोऽहिंसेति निगद्यते।

संसारे अहिंसायाः महती उपयोगिता वर्तते । गवादीनां पशूनां यदि हननं न स्यात्तर्हि देशे धनधान्यस्य दुग्ध ादीनां च न्यूनता न स्यात्। अहिंसया पशवोऽपि मनुष्येषु प्रेम कुर्वन्ति। शत्रवोऽपि अहिंसया मित्राणि भवन्ति। मनुष्यस्य आत्माऽपि अहिंसया सुखमनुभवति। अहिंसायाः प्रतिष्ठायां सर्वे सर्वत्र ससुखं निर्भयं च विचरन्ति। एतत्तु सवैरनुभूयते एव यत् न कोऽपि जगति स्वविनाशमिच्छति। सर्वे जनाः सुखमिच्छन्ति। यदि एवमेव पशुपक्षिणामपि विषये चिन्तयेयुः तर्हि न कस्यचिद् हननं कश्चित् करिष्यति। अतएव ऋषिभिः महर्षिभिश्च 'अहिंसा परमो धर्मः' इत्यङ्गीकृतः। उच्यते च-

श्रूयतां धर्मसर्वस्वं श्रुत्वा चैवावधार्यताम्।
आत्मनः प्रतिकूलानि, परेषां न समाचरेत्।।
आत्मौपम्येन भूतेषु, दयां कुर्वन्ति साधवः।
आत्मवत्सर्वभूतेषु, यः पश्यति स पश्यति।।

अहिंसैव धर्ममार्गः। अतएव भगवता बुद्धेन, भगवता महावीरेण महात्मना गान्धिना च अहिंसाया एवोपदेशः दत्तः। अहिंसायाः प्रचारे एवैतेषां जीवनं व्यतीतम्। महात्मनो गान्धिमहोदयस्य संरक्षणे अहिंसाशस्त्रेण एव भारतवर्षं पराधीनतापाशं छित्त्वा स्वतन्त्रतामलभत। अहिंसाशस्त्रेणैव भीताः विदेशिनः भारतं त्यक्त्वा पलायिताः। एषाऽहिंसाया एव महिमाऽस्ति।

यदि संसारे हिंसायाः प्रसारः स्यात् तदा न कोऽपि मनुष्यो देशो वा संसारे सुखेन शान्त्या च स्थातुं शक्नोति। हिंसया मनुष्यः क्रूरः निर्दयः सद्भावहीनश्च भवति। हिंसकेषु प्राणिषु सत्य-त्याग-तपस्या-दया-क्षमा-स्नेह-पवित्रता- विमलबुद्धि-इत्यादयः गुणाः न सन्ति। अतः सर्वैरपि सर्वदा सर्वभावेन अहिंसाधर्मः पालनीयः, लोकस्य च कल्याणं करणीयम्।

विद्यार्थिजीवनम्

लक्ष्मण कुमार
बी.ए. संस्कृत (विशेष) तृतीय वर्ष

भारतवर्षस्य प्राचीनशास्त्रेषु मनुष्यजीवनं चतुर्वर्गेषु विभक्तम् अस्ति यथा ब्रह्मचर्यः, गृहस्थः, वानप्रस्थः संन्यासश्च। प्रथमः आश्रमः ब्रह्मचर्याश्रमः वर्तते। ब्रह्मचर्याश्रमः एव विद्यार्थिजीवनस्य शिक्षा-समयोऽस्ति विद्यार्थिजीवनमेव च सम्पूर्णमानवजीवनस्य आधारशिला। अस्मिन् काले विद्यार्थी ज्ञान-आचार-विचार-संयम-शील-सत्य-इत्यादीनां गुणानामर्जनं करोति। ज्ञानार्जनाय सद्गुणानां च संग्रहणाय विद्यार्थिजीवनं सम्यगवसरोऽस्ति। विद्वद्भिः उक्तं विद्यार्थिनः विशिष्टं लक्षणम्। यथा-

काकचेष्टा बको ध्यानं श्वाननिद्रा तथैव च।
अल्पाहारी गृहत्यागी विद्यार्थिनः पञ्चलक्षणम्।।

विद्यार्थिजीवनं तपस्यायाः जीवनं भवति, एतस्मिन् काले विद्यार्थी एकाग्रमनसा विद्याध्ययनं कुर्यात्। अस्मिन् काले चरित्रनिर्माणाय स्वकीयज्ञानवर्धनाय च एकः महत्त्वपूर्णः समयः भवति। विद्यार्थिनां दिशानिर्देशाय महर्षिचाणक्यः 'चाणक्य-नीतिः' इत्यस्मिन् ग्रन्थे विशिष्टम् उपदिदेश। ये सुखं वाञ्छन्ति, ते विद्यायाः प्राप्तिं न कर्तुं शक्नुवन्ति। अतः ये सुखकामिनः स्युः ते विद्यां त्यजेयुः। एवं विद्याप्राप्त्यर्थं च सुखस्य परित्यागः तु करणीय एव। यथा चाणक्यनीतौ उक्तमस्ति-

सुखार्थिनः कुतो विद्या विद्यार्थिनः कुतः सुखम्।
सुखार्थी वा त्यजेत्विद्यां विद्यार्थी वा त्यजेत् सुखम्।।
अन्यत्रापि उक्तम्-
आचार्यात् पादमादत्ते पादं शिष्यः स्वमेधया।
पादं सब्रह्मचारिभ्यः पादं कालक्रमेण च।।

अतः विद्यार्थिजीवनम् एव मानवजीवनस्य आधारशिला अस्ति। एषः कालः एव मानवजीवनस्य सर्वोत्तमः कालः भवति। एवं च विद्यार्थिजीवने एव मानवस्य सम्पूर्णविकासः भवति एवं विद्यया युक्तः एव मनुष्यः मनुष्यः भवति। यः मनुष्यः विद्याहीनः अस्ति सः कर्त्तव्याकर्त्तव्यस्य अज्ञानात् पशुवद् व्यवहारं करोति 'विद्याविहीनः पशुः' इति। विद्या एव मनुष्यस्य उन्नतिं करोति। विद्यया एव मनुष्यः सर्वत्र सम्मानम् आप्नोति। विद्वांसः एव जगतः दुःखानि दूरीकुर्वन्ति। विद्यया एव उपदेशकाः विचारकाः ऋषयो महर्षयो नेतारश्च भवन्ति। विद्वांस एव विविधान् आविष्कारान् कृत्वा संसारस्य श्रियं वर्धयन्ति। अतः विद्यार्थिभिः आलस्यं त्यक्त्वा विद्याध्ययनम् अवश्यं कर्त्तव्यम्। विद्यया एव मोक्षप्राप्तिः भवति। अत एवोच्यते- 'ऋते ज्ञानान्न मुक्तिः'।

सुभाषचन्द्रबोसः

अभिषेक शर्मा
बी.ए. संस्कृत (विशेष) प्रथम वर्ष

विश्वेस्मिन् स्वतंत्रतासेनानी सुभाषस्य नाम को न जानाति। सः क्रांतिकारी नेता आसीत्। अस्य जन्म बङ्गप्रान्ते 1897तमे जनवरीमासस्य 23तारिकायाम् अभवत्। अस्य पिता जानकीनाथबोसः आसीत्। बाल्यकालादेव बुद्धिमान् धीरः साहसयुक्तः च आसीत्। सः कलकत्तानगरे शिक्षां प्राप्तवान्। सः 'असहयोग' इति नाम्नि आन्दोलने संलग्नोऽभवत् स्वातन्त्र्यं च प्रति सदा प्रयासरतः आसीत्। सः 'शठे शाठ्यं समाचरेत्' इति नीतेः अनुसरणं कृतवान्। सः 'आजाद-हिन्द-फौज' इत्याख्यां सेनां संघटितवान्। जर्मनी-आकाशवाणीकेन्द्रात् भारतीयजनेभ्यः स्वाधीनतायाः सन्देशं प्रेषितवान्। सः भारतदेशस्य स्वतन्त्रतायै आह्वानम् अकरोत्- 'यूयं मह्यं रक्तमपर्यत् अहं युष्मभ्यं स्वातन्त्र्यं दास्यामि।' सः भारतमातुः वीरसपूतः आसीत्। सः साम्प्रतमपि भारतीयजनानां प्रेरणास्रोतः अस्ति।

श्रीमद्भगवद्गीतायाः वैशिष्ट्यम्

रोशनी
बी.ए. संस्कृत (विशेष) तृतीय वर्ष

संस्कृतसाहित्यजगति श्रीमद्भगवद्गीतासमः ग्रन्थः न भूतो न भविष्यति। सर्वेषां शास्त्राणां सारभूतम् औषधम्। प्रसिद्धेऽस्मिन् श्लोके एतत् स्पष्टतया दर्शितम्-

सर्वोपनिषदो गावो दोग्धा गोपालनन्दनः।
पार्थो वत्सः सुधीः भोक्ता दुग्धं गीतामृतं महत्।।

'सांस्कृतिकविश्वकोश' इति नाम्ना प्रसिद्धा गीतेयम् महाभारतस्य अंशभूता। भारतीयदर्शनसाहित्ये अस्याः महत्त्वपूर्णं यत्स्थानं तत्तु सर्वविदितमेव वर्तते। गीता न केवलं सर्वासामपि उपनिषदाम्, अपितु श्रुतीनामपि सारतत्त्वं प्रस्तौति। गीतायाः दार्शनिकं साहित्यिकञ्च गौरवं सर्वैः विद्वद्भिः स्वीक्रियते। अस्याः अध्ययनं विना सामान्यतो भारतीयदर्शनस्य अध्ययनं परिपूर्णं नैव याति। अस्याः अनुवादः सर्वासु भारतीयभाषासु अनेकासु च वैदेशिकभाषासु क्रियते विद्वद्भिः। अष्टादशसु अध्यायेषु सप्त शतानि श्लोकाः सनातनं सत्यं प्रतिपादयन्ति। गीतायां ज्ञानकर्मयोगाः प्रतिपादिताः।

पितरौ

तरुण चाण्डक
बी.ए. संस्कृत (विशेष) प्रथम वर्ष

इह जगति जीवानां यथा मातापितरौ उपकारं कल्याणं च कुरुतः न तथा अन्यः कोऽपि। अन्ये जनाः अल्पकालार्थं सहायका उपकारिणो वा भवन्ति परं मातापितरौ तु जन्मकालत आरभ्य मरणकालं यावत् सर्वदैव सन्ततीनां सर्वविध-कल्याणाय निरतौ तिष्ठतः।

माता हि नवमासपर्यन्तं महता क्लेशेन सन्तानं गर्भे धारयति। यथा स्वसन्तानं कष्टं न भवेत् तथैव चेष्टते तथैव च आचरति। तस्यैव लालनपालने पोषणे संवर्द्धने च सततं दत्तचित्ता तिष्ठति। कदाचित् पुत्रो रोग-पीडितो भवति तदा करुणामयी माता विकला विह्वला च भवति। अवर्णनीयं मातुः वात्सल्यम् अगणनीयाः तस्या उपकाराः, अकथनीया च तस्याः कारुण्यकथा। अत एव शास्त्रकारेण कथितम् -

जननी जन्मभूमिश्च स्वर्गादपि गरीयसी।

पिता अपि स्वसन्तानस्य कृते सर्वप्रकारेण यतते। यदा सन्ततिः चतुःपञ्चवर्षीयो भवति तदा तस्य पिता तं शिक्षयितुं प्रयतते। सततमेव तथा प्रयत्नं कुरुते यथा पुत्रः शिक्षितः सुयोग्यो यशस्वी धनधान्यसम्पन्नः भूयात्। इदं तात्पर्यम् वर्तते यत् सर्वे एव पितरः स्वसन्ततिभ्यः अभ्युन्नतिभ्यः सुखसाधनेभ्यः च सर्वप्रकारेण प्रयत्नानि कुर्वन्ति।

एवं स्पष्टमस्ति यत् पितरौ सदैव सम्माननीयौ सेवनीयौ पूजनीयौ च। पुरा अनेकानि उदाहरणानि उपलभ्यन्ते यथा रामायणे भगवान् रामचन्द्रः पितुः आज्ञया चतुर्दशवर्षपर्यन्तं वने वासं चकार। अन्यच्च पितुरेव सुखोपभोगाय पुरुः स्वकीयं यौवनं पित्रे ददौ।

पर्यावरण-प्रदूषणम्

अंकुशकुमार
बी.ए. संस्कृत (विशेष) प्रथम वर्ष

साम्प्रति मानवसभ्यतायाः समक्षमनेकाः समस्याः तासां दुष्प्रभावाः समुत्सृजन्ते। तासु मानवसभ्यतायै पर्यावरणस्य प्रदूषणम् अपि मुख्या समस्या परिदृश्यते। अधुना औद्योगिकप्रसारेण न केवलं जलं वायुः ध्वनिः च प्रदूषितम् अपितु समग्रमपि भूमण्डलं दूषितं भवति।

वस्तुतः पर्यावरणस्य प्रदूषणस्य अनेकानि कारणानि सन्ति यथा - निरन्तरं जनसंख्यावृद्धिः, तीव्रगत्या शहरीकरणम्, परमाणुसंयंत्राणामाधिक्यम्, प्राकृतिकसंसाधनानां समधिकं विदोहनञ्च। जनसंख्यावृद्धिकारणात् भूमण्डलं प्रदूषितं भवति। नवीननगराणां निर्माणस्य कृते भूमेः खननं प्राकृतिकसंसाधनानां च विदोहनम् क्रियते । एभिः कारणैः पर्यावरणस्य प्रदूषणमेव भवति। अस्माकं देशे पर्यावरणप्रदूषणस्य निवारणार्थं सर्वकारेण अनेकविधं व्यवस्थां क्रियते यथाः गङ्गायाः स्वच्छतायै अभियानम् ।

विश्वस्वास्थ्यसंगठनेन पर्यावरणसंरक्षणाय अनेके उपायाः प्रतिपादिताः। अस्माकं देशे मध्यप्रदेशस्य भोपालनगरे सर्वकारेण पर्यावरण-प्रदूषण- अनुसंधानसंस्थानमिति नाम्ना एकः विभागः संस्थापितः। अनेन पर्यावरण-संरक्षणस्य कार्यक्रमाः सञ्चाल्यन्ते जनजागरणस्योपायाः चापि क्रियन्ते। विद्यार्थिनः पर्यावरणस्य संरक्षणं कार्यम् इत्यस्मिन् विषये जागरूकाः भवेयुः इत्युद्दिश्य दिल्लीविश्वविद्यालयस्य पाठ्यक्रमे 'पर्यावरणस्य अध्ययनम्' इति विषयस्याध्ययनं सर्वेषां विद्यार्थिनां कृते अनिवार्योऽस्ति।

दूरदर्शनम्

साक्षी चौधरी
बी.ए. संस्कृत (विशेष) तृतीय वर्ष

अस्माकं जीवने दूरदर्शनस्य स्थानं महत्त्वपूर्णम् अस्ति। सर्वेषु गृहेषु दूरदर्शनम् तु अवश्यमेव भवति। यथा अन्नम् ओदकं च तथा जीवने अनिवार्यं घटकं दूदर्शनम्। जनमध्ये लोके जातं किम् इति तस्मिन् एव निमिषे जनाः ज्ञातुं समर्थाः दूरदर्शनेन। एकः सुहृदिव अस्माकं समीपे स्थित्वा सर्वाणि कार्याणि ज्ञापयति दूरदर्शनम्।

दूरदर्शनस्य अनेके गुणाः सन्ति दोषाः अपि सन्ति। अमेरिकादेशे संजातां घटनां तस्मिन् एव क्षणे वयं द्रष्टुं श्रोतुं च शक्नुमः। आधुनिककाले यत्र कुत्रापि संजाता वार्ता क्षणेनैव दूरदर्शनेन प्रसारिता भवति। पुरातनकाले एवं नासीत्। दूरदर्शनस्य 'रियालिटी शो' इति कार्यक्रमेण कलाकाराणां प्रतिभायाः विकासो भवति। दूरदर्शनस्य साहाय्येन गृहे स्थिताः जनाः अपि देशस्य विदेशानां च दृश्यसहितान् नवीनान् विविधान् च समाचारान्, चलचित्राणि अनेकान् च मनोरंजकान् कार्यक्रमान् श्रोतुं द्रष्टुं च शक्नुवन्ति।

जन्मदिवसे प्रधानमन्त्रिणं प्रति पत्रम्

तरुण चाण्डक
बी.ए. संस्कृत (विशेष) प्रथम वर्ष

दिनांकः-

7, लोक कल्याण मार्ग
नई दिल्ली
महोदयः,
सुदिनं सुदिनं जन्मदिनं तव। भवतु मङ्गलं जन्मदिनम्। चिरंजीव कुरु कीर्तिर्वचनम्। चिरंजीव कुरु पुण्यवर्धनम्। विजयी भवतु सर्वत्र सर्वदा। जगति भवतु तव यशगानम्। प्रार्थयामहे वयं शतायुं ईश्वरः सदा त्वाम् च रक्षतु। पुण्यकर्मणा कीर्तिमर्जय जीवनं तव भवतु सार्थकम्।
भवदीया
तरुण चाण्डक

साक्षरतायाः महत्त्वम्

ज्योति पाण्डे
बी.ए. संस्कृत (विशेष) तृतीय वर्ष

आधुनिककाले शिक्षायाः अत्यन्तं महत्त्वपूर्णं स्थानं वर्तते। प्रजातन्त्रात्मकं राष्ट्रमिदं भारतम्। प्रजातन्त्रेऽस्मिन् शिक्षायाः साक्षरतायाश्च विशिष्टमहत्त्वमस्ति। जनसंख्यादृष्ट्या अस्माकं देशस्य विश्वे द्वितीयं स्थानं वर्तते। परन्तु शिक्षादृष्ट्या अस्य स्थितिः अतीव चिन्तनीया वर्तते। अत्र साक्षरतायाः प्रतिशतं अत्यल्पं वर्तते। भारतवर्षस्य अशीति-प्रतिशतं जनाः ग्रामेषु निवसन्ति। तेषु अनेके निरक्षराः सन्ति। 'साक्षरता' इति शब्दस्य ते अक्षरज्ञानं न जानन्ति। ते स्वनाम लेखितुमपि समर्थाः न भवन्ति।

राज्ये राज्ये सर्वकारः अस्यां दिशि जागरुकतां प्रदर्शयति। एतन्निमित्तं स्वायव्ययविवरणे धनस्य व्यवस्था अपि राज्यसर्वकारैः क्रियते किन्तु अपेक्षितपरिणामः नावलोक्यते। न केवलं केन्द्रसर्वकारः अपितु राज्यसर्वकाराः अपि अस्मिन् विषये प्रयासरताः सन्ति। अनेके युवकाः युवत्यश्च साक्षरतायाः कृते प्रयत्नं कुर्वन्तः सन्ति। परन्तु वस्तुस्थितिरियं वर्तते धनव्ययस्यापेक्षितः परिणामः न तथा दृश्यते धनस्य अपव्ययः तु सर्वत्रैव। योजनानुसारं साक्षराः जनाः न वर्धन्ते। इदमपि सत्यं यत् ग्रामेषु जनाः जागरूकाः न वर्तन्ते, ते शिक्षायाः महत्त्वं न अवगच्छन्ति। यदि ते जनाः जागरूकाः अभविष्यन् तर्हि ते शिक्षायाः महत्त्वं अवगमिष्यन् तत्प्राप्तिं च प्रति प्रयत्नशीलाः अभविष्यन्। यदा शिक्षायाः महत्त्वं विज्ञाय एव जनाः पठनार्थं स्वयमेव उत्साहिनः भविष्यन्ति तदा जनाः न केवलं अपितु विद्वांसः अपि भविष्यन्ति।

भारतस्य राष्ट्रध्वजः

आर्यन
बी.ए. संस्कृत (विशेष) तृतीय वर्ष

राष्ट्रियः ध्वजः राष्ट्रस्य गौरवम् भवति। अस्माकं भारतदेशस्य राष्ट्रियध्वजे त्रयः वर्णाः सन्ति। अयं ध्वजः भारतवर्षस्य परिचयं धारयति। अयं ध्वजः अतीव मनोरमः। अस्य ध्वजस्य ऊर्ध्वदेशे केसरवर्णः मध्ये धवलवर्णः अधोदेशे च हरितवर्णः विन्यस्तः। धवलांशस्य मध्ये अशोकचक्रं वर्तते। अशोकचक्रे चतुर्विंशतिः अराः सन्ति। अस्माकं राष्ट्रियध्वजे केसरवर्णः वीरत्वस्य त्यागस्य च, धवलवर्णः पवित्रतायाः शान्तेः च, हरितवर्णः उन्नतेः च समृद्धेः प्रतीकरूपेण विद्यते। अशोकचक्रः सत्यस्य प्रगतेः च प्रतीकोऽस्ति। स्वाधीनता-दिवसः, गणतंत्र-दिवसः, गान्धि-जयन्ती च इति त्रयः प्रधानाः अस्माकं राष्ट्रोत्सवाः। अस्य ध्वजस्य यशः सर्वेषां देशवासिनां यशः भवति। देशं प्रति प्रेम एव देशभक्तिः कथ्यते। सा देशभक्तिः व्यक्ति-समाज-देशकल्याणार्थं परमम् औषधम् अस्ति। एषः देशभक्तिः सर्वासु भक्तिषु श्रेष्ठा कथ्यते।

संस्कृतभाषायाः महत्त्वम्

आदित्य सिंह
बी.ए. संस्कृत (विशेष) प्रथम वर्ष

संस्कृतं विश्वस्य प्राचीनतमा भाषा अस्ति। अस्माकं देशस्य अधिकांशतः प्राचीनं साहित्यं संस्कृते एव लिखितमस्ति। विश्वसाहित्ये प्राचीनतमाः ग्रन्थाः चत्वारो वेदाः संस्कृतभाषायामेव सन्ति। पुरा देवानाम् अपि भाषा संस्कृतम् एव आसीत्। अतएव अस्याः नाम सुरभारती-देववाणी-देवभाषा-इत्यादिभिः शब्दैः अभिधीयते। प्राचीनसमये एषैव भाषा सर्वसाधारणस्य भाषा बभूव। सर्वे जनाः संस्कृतभाषायाम् एव परस्परं व्यवहरन्। संस्कृतसाहित्यम् अतीव विशालम् अस्ति। अस्याः व्याकरणं पूर्णतः वैज्ञानिकम् अस्ति। इयं भाषा सर्वप्रकारेण सरला मधुरा च अस्ति। इयं भाषा अस्माभिः मातृसमं सम्मानीया वन्दनीया च। अपि च वेदानां ज्ञानाय संस्कृतस्य अध्ययनम् अत्यावश्यकम् अस्ति। रामायण-महाभारत-गीतादयः ग्रन्थाः अस्यामेव भाषायां लिखिताः सन्ति। भारतीया संस्कृतिः संस्कृतभाषायाम् एव निहिता अस्ति।

महान् कूटनीतिज्ञः चाणक्यः

शिवानी चौहान
बी.ए. संस्कृत (विशेष) तृतीय वर्ष

चाणक्यः अप्रतिमः, कूटनीतिज्ञः, विद्वान्, दूरदर्शी दृढसंकल्पयुक्तः च बभूव। इदं प्रसिद्धम् अस्ति यत् एकदा मगधराजस्य राजसभायां केनापि कारणेन सः अपमानितः बभूव तदैव सः नन्दवंशस्य विनाशाय प्रतिज्ञां चकार । चाणक्यः नन्दवंशं समूलं नाशयित्वा चन्द्रगुप्तं च राजसिंहासने स्थापयित्वा मौर्यवंशस्य स्थापनाम् अकरोत्। 'अर्थशास्त्रम्' इति नाम्नि पुस्तके स्वराजनैतिकसिद्धान्तान् प्रतिपेदे। तेन सरलसंस्कृतभाषायां प्रतिपादितानां नैतिक-राजनैतिक-सिद्धान्तानां महत्त्वम् अद्यापि स्वीक्रियते। अनेकेषु विश्वविद्यालयेषु 'अर्थशास्त्रम्' इति ग्रन्थं तु पाठ्यक्रमे निर्धारितमस्ति। विदेशेषु अपि अस्य ग्रन्थस्य महती प्रसिद्धिः।

चाणक्यस्य जन्म एकस्मिन् अति निर्धने परिवारे बभूव। स्व- उग्रकठोरस्वभावात् एव चाणक्यः कौटिल्य अपि कथ्यते स्म। 'विष्णुगुप्तः' इति नाम्ना अपि चाणक्यः प्रसिद्धोऽस्ति। सः तक्षशिलाविश्वविद्यालये अध्ययनम् अकरोत् चतुर्दशवर्षानन्तरं षट्विंशति-वर्षीयः अयं कूटनीतिज्ञः, समाजशास्त्रस्य, राजनीतिशास्त्रस्य अर्थशास्त्रस्य च शिक्षाम् ललाभ। नालन्दाविश्वविद्यालये चाणक्यः शिक्षणकार्यम् अपि चकार। बहुवर्षाणां पश्चादपि एतस्य महतः कूटनीतिज्ञस्य चाणक्यस्य गौरवगाथा धूमिला न अभवत्।

संगणकस्य उपयोगित्वम्

पवन कुमार शर्मा
बी.ए. संस्कृत (विशेष) द्वितीय वर्ष

विश्व-विज्ञान-ज्ञानस्य, संगणकोऽस्ति संग्रहः।
सर्वकार्यस्य सिद्ध्यर्थं, संगणकं सदाऽऽश्रयः।।

'संगणक' इति शब्दः आंग्लभाषायाः गणनार्थकात् कम्प्यूट इति शब्दाद् निष्पद्यते, अतः 'कम्प्यूटर' इत्यस्य कृते 'संगणक' इति शब्दः प्रयुज्यते। आधुनिकाविष्कारेषु 'कम्प्यूटर' इत्यस्य विशिष्टं महत्त्वं वर्तते। संगणकेन मानवजीवने नवीना क्रान्तिः विहिता। संगणकस्य यादृशी तीव्रा प्रगतिः अधुना दृश्यते, न तादृशी प्रगतिः अन्यस्याः कस्या अपि क्रान्तेः संलक्ष्यते। अस्य उपयोगः भवननिर्माणे, विमानादीनां दिशा-निर्देशने, रोगाणां सूक्ष्म-परीक्षणे, शोधकार्ये, वाणिज्ये, व्यवसाये शिक्षाक्षेत्रे, मनोरञ्जनविधौ ललितकलादिषु च भवति। आकार-प्रकार-दृष्टया कार्यक्षमतां च आश्रित्य कम्प्यूटरस्य चत्वारो भेदाः सन्ति- 1. मेनफ्रेम-कम्प्यूटरः 2. मिनि कम्प्यूटरः 3. माइक्रो-कम्प्यूटरः 4. सुपर-कम्प्यूटरः च। शिक्षाक्षेत्रे संगणकानां बहुविधा उपयोगिता। प्रशिक्षणकार्ये, शोधकार्ये, विविधविषयाणां शिक्षणे च संगणकस्य उपयोगो भवति। परीक्षा-कार्येषु परिणाम-संगणने, परीक्षा-परिणाम-प्रकाशनादि-कार्येषु अस्य उपयोगो भवति। पुस्तकादि-प्रकाशनेऽपि एतस्य अतीव उपयोगित्वम् वर्तते। शोधकार्येषु, भौतिकविज्ञाने, रसायन-विज्ञाने, गणितशास्त्रे, कृषिविज्ञाने, समाजविज्ञानादिषु संगणकस्य उपयोगो प्रतिदिनं वर्धते एव। कम्प्यूटर-माध्यमेन विशालभवनानां सेतूनां च आदर्शचित्राणि सारल्येन प्रस्तूयते। वित्तीय-संस्थानस्य कृते, बीमा-शेयर-प्रभृति-कार्येषु संगणकस्य महत्ता सर्वैरनुभूयते। साम्प्रतं सर्वाऽपि टेलीफोन -एक्सचेंज-व्यवस्था संगणकानां माध्यमेन विधीयते। कम्प्यूटर-संबद्धा इंटरनेट-प्रणाली महासमुद्रवद् वर्तते। सर्वस्मिन् जगति यत् किंचिद् ज्ञानं विज्ञानं शोधकार्यादिकं वर्तते, तत् सर्वम् एकत्रैव प्राप्तुं शक्यते एतेन साधनेन। देशस्य उन्नत्यै, प्रगत्यै विकासाय च संगणकस्य महती आवश्यकता वर्तते।

गङ्गा

तान्या महाजन
बी.ए. संस्कृत (विशेष), प्रथम वर्ष

गङ्गा भारतवर्षस्य सर्वासु नदीषु पवित्रतमा नदी गण्यते। एषा 'सुरनदी' इति नाम्नापि कथ्यते। हिन्दूनां विश्वासोऽस्ति यदस्यां स्नात्वा नरः पापात् विमुच्यते। प्रातःकाले सर्वे सादरं स्तुवन्ति-

गङ्गे च यमुने चैव गोदावरि सरस्वति।
नर्मदे सिन्धु कावेरि जलेऽस्मिन् सन्निधिं कुरु।।

जाह्नवी-भागीरथी-हैमवती-सुरसरिता-इत्यादीनि नामानि गङ्गायाः एव सन्ति। पौराणिकाः गङ्गा विष्णोः पादाङ्गुष्ठात् निर्गता इति मन्यते। पुरा एषा स्वर्गे उवाह। महाराजो भगीरथः स्वपूर्वजानाम् उद्धाराय भगवन्तं विष्णुमाराध्य इमाम् स्वर्गात् पृथिव्यामानिनाय। ततः प्रभृति एषा 'भगीरथी' इति नाम्ना प्रसिद्धा बभूव।

भौगोलिकदृष्ट्या गङ्गा हिमालयस्य 'गंगोत्री' इति स्थानात् उद्गच्छति। हिमालयात् निर्गत्य एषा भारतवर्षस्य उत्तरपथे प्रवहति भारतभूमिं च कृतकृत्यां करोति 'गङ्गासागरसंगम' इति स्थाने बंगसागरे पतति।

अस्याः तटे हरिद्वार-प्रयाग-वाराणसी-इत्यादीनि अनेकानि तीर्थस्थानानि सन्ति प्रतिवर्षं पुण्येषु पर्वसु लक्षाणि जनाः एषु तीर्थस्थानेषु आगत्य अस्याः पावनजलेन स्नाानं कृत्वा दुरितानि दूरीकुर्वन्ति। यन्त्रकाराः अस्याः जलमवरुध्य सेतुं बद्ध्वा महाजलाशयेषु जलसञ्चयं कुर्वन्ति। एवं प्रकारेण सञ्चितं जलं क्षेत्राणां सिञ्चनाय उपयुज्यते। अनेन भूमिः उर्वरा भवति प्रभूतं च अन्नमुत्पादयति। एवं गङ्गायाः जलं कृषेः महान्तमुपकरोति। अस्याः जलेन विद्युदपि उत्पन्ना भवति। प्राचीनकाले ऋषयः, मुनयः तपस्विनः च गङ्गायाः तटे ऊषुः तपस्यां च चक्रिरे। साम्प्रतमपि हरिद्वारादिषु तीर्थस्थानेषु गङ्गायाः तीरे सुन्दराणि मन्दिराणि सन्ति। अस्याः तटः सदैव घण्टा-ताल-मृदंगादीनां ध्वनियुक्तः भवति। अस्याः तटे क्वचित् तपस्विनः तपं कुर्वन्तः दृश्यन्ते, क्वचित् साधकाः साधनां कुर्वन्तः लक्ष्यन्ते, क्वचित् भक्तजनाः ईश्वरस्य ध्यानं कुर्वन्तः च विलोक्यन्ते। सर्वे देवाः ऋषयः मुनयः मानवाश्च अस्याः महिमानं गायन्ति।

नष्टः अन्नपूर्णो घटः

काजल

बी.ए. संस्कृत (विशेष), तृतीय वर्ष

कस्मिंश्चित् नगरे कश्चिद् दरिद्रः ब्राह्मणः वसति स्म। सः भिक्षाटनेन जीवनं करोति स्म। कदाचित् सः एकम् अन्नपूर्णं घटं प्राप्तवान्। तं घटं नागदन्ते अवलम्ब्य तस्य अधः उपविश्य सः सदा तं घटमेव पश्यति स्म।

एकदा रात्रौ सः चिन्तितवान्- 'यदि देशे दुर्भिक्षः भवेत् तर्हि एतस्य शतरुप्यकाणां मूल्यं भवेत्।' तदा अहम् एतत् विक्रीय तेन धनेन अजद्वयं क्रेष्यामि। कालान्तरे तेन अजसमूहः एव भविष्यति। अनन्तरम् अजसमूहं विक्रीय धेनवः क्रेष्यामि। अनन्तरं ताः विक्रीय महिषीः, ताः च विक्रीय अश्वान् क्रेष्यामि। तान् अपि विक्रीय यथेष्टं धनम् अर्जयिष्यामि बृहत् च गृहं निर्मापयिष्यामि। तदा कश्चित् ब्राह्मणः आगत्य रूपवतीं स्वकन्यां मह्यं दास्यति। अनन्तरं मम पुत्रः जनिष्यति। देवशर्मा इति तस्य नामकरणं करिष्यामि। यदा सः जानुभ्यां चलितुं समर्थः भविष्यति अहम् च अश्वशालायां पुस्तकं पठन् स्थास्यामि। तदा देवशर्मा जानुभ्यां चलन् मम समीपम् आगन्तुम् उद्यतः भविष्यति। तस्मिन्नेव काले तं बालं गृहीतुं तस्य मातरम् आज्ञापयिष्यामि। यदा सा मम वचनं न अश्रोष्यत् तदा अहं कोपेन पादप्रहारेण तां अदण्डयिष्यम् इति। एवं चिन्तयन् यावत् सः पादप्रहारमेव कृतवान् तावदेव अन्नपूर्णं घटः पतितः, भग्नः च।

अनागतवतीं चिन्ताम् असम्भाव्यां करोति यः।
स एव पाण्डुरः शेते देवशर्म पिता यथा।।

त्रयो धूर्ताः

स्मृति
बी.ए. संस्कृत (विशेष), तृतीय वर्ष

कस्मिंश्चित् ग्रामे मित्रशर्मा नाम ब्राह्मणः अवसत्। सः अतीव निर्धनः। कदाचित् सः ग्रामान्तरं गतवान्। तत्र भूस्वामी अतीव दयालुः आसीत्। सः ब्राह्मणाय दानरूपेण एकम् उत्तमम् अजं दत्तवान्। ब्राह्मणः तम् अजं स्वग्रामम् आनेतुम् उद्यतः। परन्तु अजः मार्गे इतस्ततः धावितुम् आरब्धवान्। अतः ब्राह्मणेन तम् अजं स्कन्धे कृत्वा गृहं प्रति अगच्छत्।

तेन एव मार्गेण त्रयो धूर्ताः आगच्छन्ति स्म। ते ब्राह्मणम् अजं च दृष्ट्वा परस्परं चिन्तितवन्तः 'कथञ्चित् एतं ब्राह्मणं वञ्चयित्वा अजम् अपहराम' इति। अनन्तरं तेषु एकः वेषपरिवर्तनं कृत्वा ब्राह्मणस्य पुरतः आगत्य उक्तवान्- "भोः ब्राह्मणोत्तम, किम् एतत् अकार्यं करोति भवान्? कुक्कुरं वहति किल? एतादृशं लोकविरुद्धं कार्यं न करणीयम्। जनाः यदि द्रक्ष्यन्ति तर्हि हसिष्यन्ति इति।"

ब्राह्मणः क्रुद्धोऽभवत् अकथयच्च -'किं भवान् अन्धः? अजं कुक्कुर इति वदति किल भवान्?' इति। 'मा कुप्यतु भवान्! भवान् यथा इच्छति तथैव करोतु। भवतः स्कन्धे स्थितः तु कुक्कुर एव, न तु अजः' इति उक्त्वा सः धूर्तः गतवान्।

अथ किञ्चित् दूरं गत्वा द्वितीयः धूर्तः तं ब्राह्मणममिलत्। सः ब्राह्मणं दृष्ट्वा आश्चर्ययुक्तः भूत्वा पृष्ट्वान्-'किं भोः ब्राह्मणोत्तम। कुक्कुरं स्कन्धे नयसि किल? इदानीं ब्राह्मणस्य मनसि संशयः उत्पन्नः। सः तं प्रति अकथयत् - 'किं भो! भवान् अपि अन्धः वा? अजं कुक्कुर इति वदति किल!' इति श्रुत्वा द्वितीयः धूर्तः - 'क्षम्यताम्। अहं वस्तुस्थितिम् उक्तवान्। भवान् यथा इच्छति तथा करोतु' इति उक्त्वा सः अपि गतवान्।

अथ किञ्चित् दूरं गत्वा तृतीयः धूर्तः तं ब्राह्मणममिलत् तथैव चावदत्। तस्य तादृशं वचनमाकर्ण्य मित्रशर्मा अजं 'अयं कुक्कुर' इति मत्वा भूमौ अक्षिपत् अगच्छत् च। त्रयो अपि धूर्ताः तम् अजम् अनयन् अपचन् अभक्षयन् च।

मानवजीवने आत्मानुशासनस्य महत्त्वम्

प्रिया
बी.ए. संस्कृत (विशेष) द्वितीय वर्ष

मनुष्यः खलु सामाजिकप्राणी अस्ति। समाजनिर्माणं मनुष्यैरेव भवति। मनुष्यस्य जीवने आत्मानुशासनस्य महत्त्वपूर्णं स्थानं विद्यते। मनुष्य एव समाजस्य उत्कर्षकाः च। अतः समाजस्य उत्कर्षेऽपकर्षे च मानवव्यवहारः एव कारणं मन्यते यतोहि अस्माकं कार्यकलापाः परस्परम् अनुबद्धाः एकस्य व्यवहारः अपरं प्रभावयति। अतः आत्मानुशासनं सर्वथा अपेक्षितम् अस्ति।

'अनु' उपसर्गपूर्वके 'शस्' धातोः 'ल्युट्' प्रत्यये कृते अनुशासनं सिध्यति। अनुशासनस्य उचितम् अर्थम् अस्ति व्यवस्था नियमो वा। प्रातःकालात् सायंपर्यन्तं वयं सर्वां प्रकृतिम् अनुशासने व्यवस्थितामेव पश्यामः। यथा सूर्यः नियमतः उदेति नियमानुसारं च अस्तं गच्छति। सर्वे ऋतवः नियमेन स्वस्वसमये प्रकृतेः शोभान् उत्कर्षयन्ति। ग्रहनक्षत्राणि च नियमानुसारं स्वस्वमार्गेषु विचरन्ति। यदा कदाचित् सूर्यस्य उदयः न भवेत् तर्हि अन्धकारे कथं वयं स्वकार्यं कर्तुं शक्ष्यामः? अतः किम् अस्माकं कर्त्तव्यं नास्ति यत् वयमपि प्रकृतेः उदाहरणैः स्वजीवने आत्मानुशासनस्य पालनं सदैव कर्त्तव्यम्।

समाजे मानवजीवने वा आत्मानुशासनस्य सर्वाधिकं महत्त्वम् अस्ति। जीवने सफलतायै उन्नत्यै वा आत्मानुशासनं परमावश्यकम् अस्ति। छात्रजीवने तु आत्मानुशासनं सर्वथा अनिवार्यम् अस्ति। अनया शिक्षया छात्रेषु आत्मसंयमः भवति। आत्मानुशासनेन छात्रैः प्रतिविषयस्य अध्ययनस्य व्यवस्था क्रियते, समयविभागः क्रियते, परीक्षा अपि समयानुसारं भूयते। मेधाविछात्राः सदैव समयस्य सदुपयोगं कुर्वन्ति एवमेव कृत्वा श्रेष्ठाः नराः भवन्ति छात्रजीवने यदा अनुशासनं न भवेत् किमपि कार्यम् पूर्णतां न गच्छेत्। विद्यालयेषु अपि आत्मानुशासनस्य परिपालनम् अतीव आवश्यकम् अस्ति। ये विद्यार्थिजनाः विद्याध्ययनं अनुशासनेनैव कुर्वन्ति ते स्वजीवने सर्वदा सफलतां प्राप्नुवन्ति। अस्माकं जीवने सर्वासु दशासु आत्मानुशासनस्य आवश्यकता वर्तते। समाजे सुखशान्तिः समृद्धिः जायते सामाजिकपर्यावरणं च सौहार्दपूर्णं भवति।

सर्वे अपि मानवैः प्रकृते अनेकानि तत्त्वानि अनुशासनपूर्णेन दृष्ट्वा स्वजीवने प्रतिक्षणं आत्मानुशासनस्य पालनम् एव अवश्यमेव कर्त्तव्यं यतोहि आत्मानुशासनस्य पालने मनुष्या स्वजीवने अनेकानि सुखानि प्राप्नुवन्ति।

शठे शाठ्यं समाचरेत्

अंकित

बी.ए. संस्कृत (विशेष) तृतीय वर्ष

यो जनः परस्यापकारं करोति शिष्टाचारस्य सदाचारस्य च नियमान् न पालयन्ति, दुर्वृत्तः कुकर्मसु प्रवृत्तश्च भवति स 'शठ' इत्युच्यते। एतादृशाः पुरुषाः समाजस्य हानिं कुर्वन्ति, देशस्योन्नतिमार्गे बाधामुपस्थापयन्ति, जातेः समाजस्य राष्ट्रस्य चावनतेः कारणं भवन्ति। अतः एतादृशानां पुरुषाणां नियन्त्रणं दण्डनं ताडनादिकं चावश्यकमस्ति।

मनुना मनुस्मृतौ ये महापातकिनः सन्ति, तेषां गणना आततायिषु कृता। तेषां वधे न कोऽपि दोषो भवति। आततायिनश्च षड्विधा भवन्ति-गृहादिदाहकः, विषप्रदः, वधकर्ता, धनहर्ता, क्षेत्रहर्ता, स्त्रीहर्ता च।

आततायिनमायान्तं, हन्यादेवाविचारयन्।।१।।

अग्निदो गरदश्चैव, शस्त्रोन्मत्तो धनापहः।

क्षेत्रदारहरश्चैतान्, षड् विद्यादाततायिनः।।२।।

लोके सदा दृश्यते एतद् ये जना अतीव साधवः सरलाः भवन्ति, तेषामादरो न भवति। दुष्टास्तेषां धनादिकमपि हरन्ति कार्यबाधां च कुर्वन्ति। अत एवोच्यते 'मृदुर्हि परिभूयते'। राजनीतौ च विशेषतः शठेषु शठतायाः प्रयोगः करणीयः। अन्यथा कार्यसिद्धिर्न भविष्यति। उक्तं च नैषधीयचरिते- आर्जवं हि कुटिलेषु न नीतिः। महाकविभारविनाऽपि किरातार्जुनीये एतस्यैव प्रतिपादनं कृतमस्ति।

व्रजन्ति ते मूढधियः पराभवं, भवन्ति मायाविषु ये न मायिनः।

प्रविश्य हि घ्नन्ति शठास्तथाविधानसंवृताङ्गान् निशिता इवेषवः।।३।।

अवन्ध्वकोपस्थ विहन्तुरापदां, भवन्ति वश्याः स्वयमेव देहिनः।

अमर्षशून्येन जनस्य जन्तुना, न जातहार्देन न विद्विषादरः।।४।।

इमां नीतिमेव स्वीकृत्य रामः पापिनो रावणस्य वधं चकार पाण्डवाश्च दुर्योधनादीनां कौरवाणाम्। एषा नीतिः शठेष्वेव प्रयोज्या, न तु सज्जनेषु। ये सज्जनाः सन्ति, तैः सह सद्भावपूर्णमेव व्यवहर्तव्यम्। उक्तं च महाभारतेऽपि-

यस्मिन् यथा वर्तते यो मनुष्यस्तस्मिन् तथा वर्तितव्यं स धर्मः।

मायाचारो मायया वर्तितव्यः, साध्वाचारः, साधुना प्रत्युयेयः।।

अन्या चापि सूक्तिरस्ति-

पयः पानं भुजंगानां केवलं विषवर्धनम्।।

अतो मनुष्यैः स्वकल्याणाय शठेषु शठतापूर्ण एव व्यवहारः कार्यः, सज्जनेषु च सज्जनतापूर्णः। एषैव नीतिवदां सम्मतिरस्ति। उक्तं च कालिदासेन-

शाम्येत् प्रत्यपकारेण, नोपकारेण दुर्जनः।

हकारविसर्गयोः कः भेदः

सारांश आर्य
एम.ए. (संस्कृत) पूर्वार्द्ध

संस्कृतज्ञाः सन्ति एव बहवः। किन्तु वर्णोच्चारणविषये यदा प्रश्नः भवति तदा समुचितोत्तरदाने क्लेशम् अनुभवन्ति ते सर्वे अपि। 'ह' कार-विसर्गयोः कः भेदः? मकारानुस्वारयोः भेदः कः इत्यादयः प्रश्नाः असकृत् सम्मुखीकरणीयाः भवन्ति। 'अकुहविसर्जनीयानां कण्ठः इत्यादीनां कौमुदीस्थपङ्क्तीनाम् अवगमनमात्रेण, विवरणमात्रेण वा पूर्वोक्तानां प्रश्नानाम् उत्तरं दातुं न शक्यते।' अतः एव इह लेखे हकारविसर्गयोः भेदविषये किञ्चित् उच्यते। तयोः भेदस्य अवगमनाय अन्ये केचन प्राथमिकाः अंशाः अपि आवश्यमेव ज्ञातव्याः। ते अपि अत्र विव्रियन्ते।

आदौ विसर्गस्य शिक्षाग्रन्थेषु उक्तं विवरणं पश्यामः। विसर्गः 'अयोगवाह' शब्देन निर्दिश्यते। विसर्जनीयः जिह्वामूलीयः, उपध्मानीयः, अनुस्वारः, यमः इत्येते अयोगवाहाः। एते 'आश्रयस्थानभागिनः' इति उच्यन्ते। यान् आश्रित्य ये तिष्ठन्ति तदेव तेषां स्थानम् इति तात्पर्यम्। तथा हि पाणिनीयशिक्षा- (श्लोक, २, ३)

अनुस्वारयमानां च नासिका स्थानमुच्यते।
अयोगवाहा विज्ञेया आश्रयस्थानभागिनः।।

आश्रयस्थानभागित्वात् एव विसर्गस्य सर्वत्रापि समानम् उच्चारणं न भवति। 'विसर्गः' इति शब्दः एव एतम् अर्थं ज्ञापयति। विविधरूपेण सर्जनीयः उच्चारणीयः इति विसर्गः। पूर्वस्वरश्रुतेः ये विशेषधर्माः ते एव भवन्ति विसर्गस्यापि। विसर्गोच्चारणविषये लघुमाध्यन्दिनशिक्षा वदति-

देवो वः सविता चात्र हकारसदृशो भवेत्।।
देवीस्तिस्त्रो विसर्गस्तु हिकारसदृशो भवेत्।
आद्युस्ते पशुरित्यादौ हुकारसदृशो भवेत्।।
विसर्गश्चाग्नेरित्यादौ हेकारसदृशो भवेत्।
विसर्गो बाद्धोरित्याहौ होकारसदृशो भवेत्।।
अथ स्वैर्दक्षैरित्यादौ हिकारसदृशो भवेत्।
विसर्गो द्यौष्पितेत्यादौ हुकारसदृशो भवेत्।।
हकारो नैव मन्तव्य इति शास्त्रव्यवस्थितिः।
श्वाससदृशो विसर्गो भवति ध्रुवम्।। (१८-२२)

एतेषु श्लोकेषु 'हकारसदृशः', 'हिकारसदृशः', 'हुकारसदृशः' इत्यादिकम् उक्त्वा अन्ते 'हकारो नैव यन्तव्यः' इति स्पष्टतया उक्तम्। तस्मात् स्पष्टं यत् विसर्गस्य उच्चारणं हकारोच्चारणात् विद्यते एव इति। स च भेदः कः इति पश्यामः तावत्।

आदौ अङ्गानां परिचयं प्राप्नुयाम। नासिका, आस्यं, कण्ठः उरः चेति चत्वारः स्थूलविभागाः। आस्यं नाम अत्र कण्ठात् ऊर्ध्वं नासिकावर्जं यः वर्णोत्पत्तिकारणीभूतः प्रदेशः तद्वाचक्रः।

अस्माभिः अन्तः स्वीकृतः श्वासः श्वासनलिकाद्वारा फुप्फुसं प्रविशति। ततः एव अशुद्धः वायुः श्वासनलिकाद्वारा निर्गच्छति। श्वासनलिकापार्श्वे एव अन्ननलिका अपि भवति। तयोः मध्ये तनुः पटलः भवति। आहारस्वीकारावसरे सः श्वासनलिकां, श्वासोच्छ्वाससमये वर्णोच्चारणसमये च अन्ननलिकां च पिदधाति। फुप्फुसात् बहिर्निर्गच्छन् वायुः एव विभिन्नेषु स्थानेषु विकृतिं प्राप्य वर्णान् उच्चारयति। (यम् अन्तः स्वीकुर्मः सः शुद्धः वायुः न वर्णोत्पत्तिप्रयोजकः इति तात्पर्यम्।)

श्वासनलिकाद्वारा आगतः वायुः प्रमुखं प्रथमं च यत्र परिष्कारं प्राप्नोति तदेव 'ध्वनियन्त्रम्' इति उच्यते। तत्र द्वौ स्नायू भवतः। 'घोषतन्त्र्यौ' इति तयोः निर्देशः भवितुम् अर्हति। (एते तन्त्र्यौ प्रायः ओष्ठकारे भवतः) श्वासविकासावसरे ते अन्योन्यासंसक्ते भवतः। स्वरयन्त्रमुखं च अतिविस्तृतं भवति। एतदवस्थायां न कोऽपि वर्णः उत्पद्यते। घोषतन्त्र्योः पिधानस्थितिः, दूरस्थितिः, सामीप्यं कठोरता, शैथिल्यं, सकम्पता, कम्पराहित्यम् इत्यादयः अवस्थाः विविधान् वर्णान् सृजन्ति।

हकारविसर्गयोः भेदस्य अवगमनमात्राय वयम् उद्यताः इत्यतः तावन्मात्रसम्बद्धाः विषयाः एव अत्र चर्च्यन्ते, न इतरे। तदर्थं श्वासघोषयोः अवगमनं पर्याप्तम्।

विसर्गः स्वरसम्बन्धी इत्यतः स्वरसम्बद्धाः विषयाः केचन अत्र विव्रियन्ते। वस्तुतः स्वरोच्चारणावसरे कस्यापि स्थ. ानस्य स्पर्शः न भवति। तथापि यत्र करणस्य उपसंहारः तदेव स्वराणां स्थानम् इति उच्यते। तथा हि तैत्तिरीयप्रातिशाख्यम्- 'स्वराणां यत्रोपसंहारः तत् स्थानम्। अन्येषां यत्र स्पर्शनम्' इति। 'स्वराणाम् उच्चारणे जिह्वाग्रादीनां करणानां यत्र उपसंहारः (सन्निकृष्टता) तत् स्थानम्। व्यञ्जनानाम् उच्चारणे तु यत्र देशे स्पर्शः तत् स्थानम्' इति तात्पर्यम्। 'यत्र स्पर्शः तदेव स्थानम्' इति मते तु स्वराणां स्थानं न भवति इत्येव वक्तुम् उचितम्। तथापि कौमुद्यादिषु उक्तम् इत्यतः अत्रापि स्थानानि दर्शितानि। कस्यचिदपि स्वरस्य उच्चारणावसरे स्थानस्य स्पर्शः न भवति इत्येतत् स्वरोच्चारणसम्बद्धेषु चित्रेषु स्पष्टतया द्रष्टुं शक्यते। अ- कण्ठः, इ- तालु, उ- ओष्ठौ, ऋ- मूर्धा, ए, ऐ- कण्ठतालु, ओ, औ- कण्ठोष्ठम्।

एतावत् विवरणं तु लघुकौमुद्यादिषु उपलभ्यते एव। किन्तु स्थानविवरणज्ञानमात्रेण उच्चारणव्यवस्था पूर्णतः ज्ञाता न भवेत्। जिह्वा, हनुः, ओष्ठौ इत्येतेषां विन्यासः अपि अत्र सम्बद्धः भवति।

एतावत् विवरणं तु लघुकौमुद्यादिषु उपलभ्यते एव। किन्तु स्थानविवरणज्ञानमात्रेण उच्चारणव्यवस्था पूर्णतः ज्ञाता न भवेत्। जिह्वा, हनुः, ओष्ठौ इत्येतेषां विन्यासः अपि अत्र सम्बद्धः भवति।

हकारविसर्गौ उभौ अपि कण्ठ्यौ एव। तयोः भेदः तु- यत्र नादः अनुप्रदानं महाश्च प्राणः सः हकारः। यत्र श्वासः अनुप्रदानं महाश्च प्राणः सः विसर्गः। परस्वरश्रुतेः ये विशेषधर्माः ते एव भवन्ति हकारस्य। तदभावे 'अ' वत्। पूर्वस्वरश्रुतेः ये विशेषधर्माः ते एव भवन्ति विसर्गस्य। उभयत्रापि आस्ये विवृतसंसर्गः अपेक्ष्यते। केवलः हकारः भवति कण्ठ्यः। तथाहि-

अवर्णश्च विसर्गश्च हकारश्चापि केवलः।
कण्ठ्या वर्णाः स्मृताः... (वर्णरत्नप्रदीपशिक्षा-३३)

किन्तु सः एव हकारः ङञणनमैः यवरलैः च यदा युक्तः स्यात् तदा तस्य औरस्यं भवति न तु कण्ठप्रयत्नः। तथा हि-

हकारं पञ्चमैर्युक्तम् अन्तस्थाभिश्च संयुतम्।
उरस्यं तं विजानीयात् कण्ठ्यमाहुरसंयुतम्।। (पाणिनीयशिक्षा १६)

ह्व ह्न ह्म इत्यादीनाम् उच्चारणसमये हकारस्य कण्ठप्रयत्नः न इति वदति पाणिनीयाशिक्षा। किन्तु उरस्थत्वं कथमिति विवरणं क्वापि न निर्दिष्टम् । वेदज्ञाः 'ह्म' (ह्+भ) इत्येतत् 'म्ह' (मृ+ह) इति उच्चारयन्ति प्रायः। अयमेव औरस्यप्रयत्नः इति तेषां कथनम्। अन्ये एतत् न सहन्ते। तत्र हकारस्य प्राथम्यं, मकारस्य आनन्तर्यं च स्फुटम्। अतः 'ह्य' (ह्+य) इत्येव उच्चारणीयम् इति एवकारपुरस्सरं कथयन्ति ते। उरस्यं नाम किम् इत्यत्र अस्पष्टता इत्यतः नाधिकं किमपि उच्यते अत्र। [अन्यच्च, उरसि कस्यापि वर्णस्य उत्पत्तिः न सम्भवति। यतः तत्र वर्णोत्पादनयोग्यः अवयवः कोऽपि नास्ति। 'उरसा भूयसः वायोः निस्सारणमेव उरस्यत्वम्' इति 'उरस्यत्वस्य विवरणं वक्तुं शक्यम् इति भाति।']

'ह' इत्यादौ तु हकारादितया एव उच्चारणं दृश्यते। तन्नाम कण्ठ्यप्रयत्नः एव तत्र दृश्यते इत्यर्थः। एतद्विषये लोमशशिक्षा वदति-

हकारं रेफसंयुक्तं कदाचित् बलसंयुतम्।
उच्चारणीयं कण्ठस्थमेवमीप्सन्ति पण्डिताः।। (लोमशशिक्षा-९०)

एतावता अपि हकारोच्चारणस्य साकल्येन विवरणं न प्राप्तम् इत्येव वक्तव्यं भवति। असंयुतस्य तु कण्ठ्यप्रयत्नः इत्यत्र न कस्यापि विप्रत्तिपत्तिः, संयुतव्ये एव अस्पष्टता।

'हकारविसर्गौ उभौ अपि कण्ठ्यौ। यत्र नादः अनुप्रदानं महांश्च प्राणः सः हकारः। यत्र श्वासः अनुप्रदानं महांश्च प्राणः सः विसर्गः। विसर्गस्य यदा उच्चारणं वयं सर्वे कुर्मः तस्मिन् काले नाभिप्रदेशात् ध्वनिः उत्क्रम्य कण्ठप्रदेशात् उच्चारणं भवति।' विसर्गस्य उच्चारणसमये नाभिः पृष्ठभागे गच्छति उभयत्रापि आस्ये विवृतसंसर्गः इत्ययमेव हकार-विसर्गयोः भेदः इति कथनस्य तात्पर्यम्।

kalakriti

Kalakriti

ENGLISH

Editorial Board

Dr. Prachee Dewri
Ms. Ruchi Sharma

Student Editors

Raghav Gautam
Soumya Vats
Shreyasi Banerjee
Yashodhara Sengupta
Ananya Gaur
Nilesh Goswami

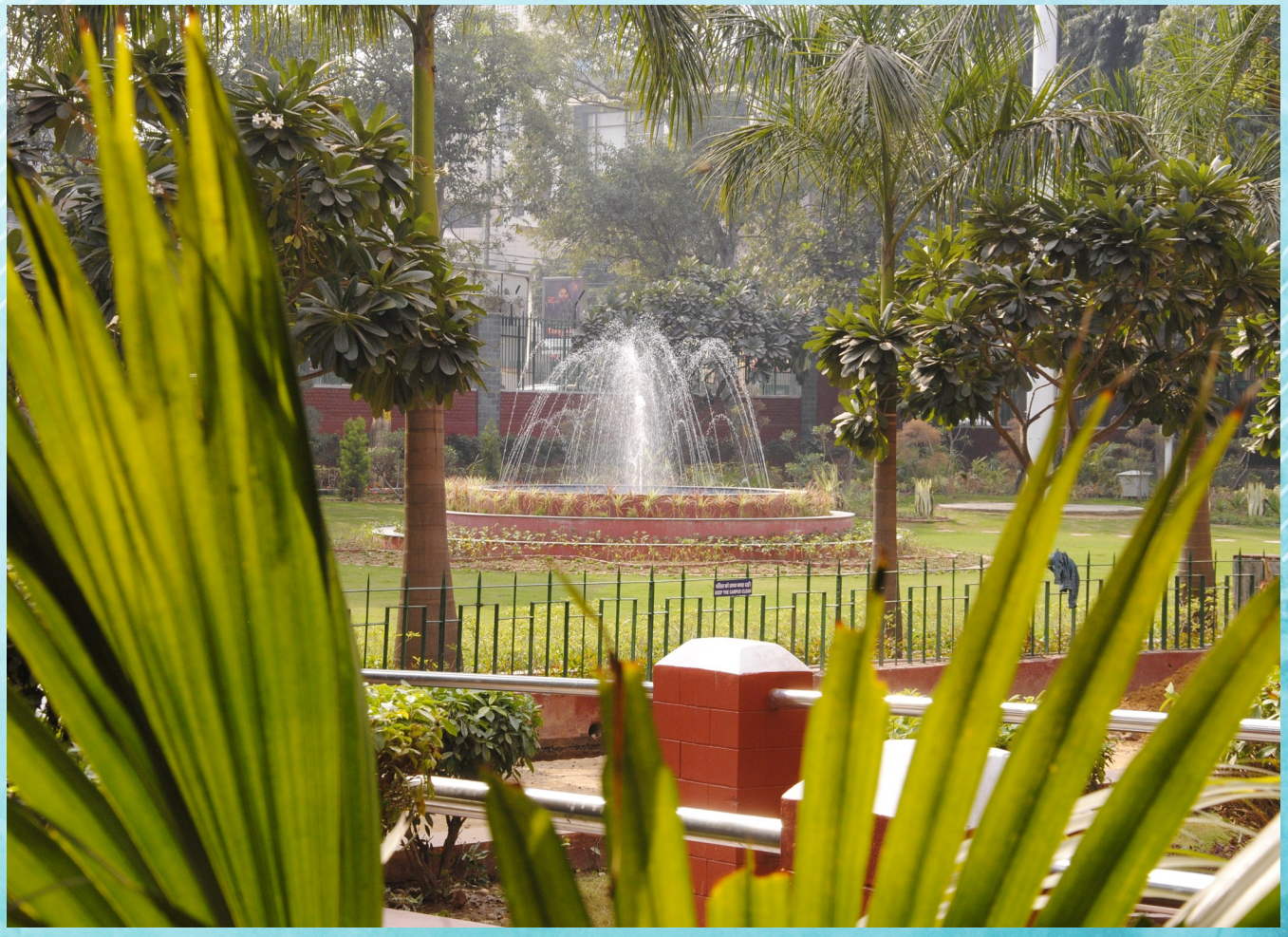

INDEX

1. A Brief Moment — Yashorma Sandal **55**
2. Metamorphosis — Anannya Chakra **55**
3. The Lone Survivor — Anannya Chakra **56**
4. Metacarpal — Shreyasi Banerjee **57**
5. Sepia Stills — Shreyasi Banerjee **57**
6. The Land Where the Crimson Flows — Premtosh Kar **58**
7. A Failed Attempt at Knowing Life — Yashkant Pandey **59**
8. Memories — Kanishka Agarwal **60**
9. Dear Kashmir — Ifrah Fatima **61**
10. Aftertaste — Soumya Vats **61**
11. Introduction to Cryptography — Shubham Kumar **62**
12. Untitled — Vidushi Arya **63**
13. Summer and Sonder — Udayveer Singh **63**
14. "The Self" Series — Aakriti Thatal & Reyhan Tamang **64**
15. Semester with a Side — Soumya Vats & Farhan Mozammil **65**

A Brief Moment

Yashorma Sandal
BA (Hons) English, 3rd Year

I quickly walked across the street as it had started raining and the sky had turned dark. I saw from the corner of my eye as the gaze of the chai-wala and his few customers followed my pace, with their eyebrows sternly folded in grimness. Did my blue shorts not fit in the narrow stretch of their perspective? Or was my red lipstick too bright for their ghoonghat-accustomed eyes?

I opened the rusty black iron gate of my Dada's house and it welcomed me with a screech. I took off my boots and entered the house. Around the big brown mahogany table was the study room where my Dada usually sat on a big armchair, and read books and clippings of old newspaper articles. As usual, he was wearing a pathani suit and was smoking a cigar.

"Namaskar, Dada. How are you?", I said as I embraced him. He just nodded and continued reading his book. His dusty old radio was on the table along with his glasses and a cup of tea. It had long stopped working but dada had never allowed anyone to throw his dear radio away. I walked across the study room, admiring the beautiful brown wooden floors and big maroon windows framed with red curtains. The house always overwhelmed me with its grandeur, no matter how many times I went there. The kitchen garden did not retain its past glory since Dadi passed away, but it still smelled of fresh limes and chilies.

I sat by the window above which a picture of my Dadi, adorned with a marigold garland, hung. I smiled at her picture; I could almost see her smiling back at me. I looked out at the sky. The rain had stopped, and the sky was blue again. "Does the sky live in its own shadow?" I wondered. It was just a big space of nothing, tightly pulling the colour blue to himself, even for some time, if not forever. I gazed at the blue sky in awe as it shone above me, sprinkled with some white clouds and the yellow bright sun at another corner.

I heard the chair move and turned around. I saw my Dada closing his book with a thud and getting up to leave the room. Just as he was about to call out my name, he saw me and the wrinkles on his forehead melted to form the folds of his smile. I too got up from my seat by the window, glanced again at the sky and ran across the room to him.

"Chai?" I asked. "Of course!" he replied.

Metamorphosis

Anannya Chakra
BA (Hons) English, 2nd Year

Watching the wafting clouds streak
Across a picture perfect sky
I go back to the time
I could fit on window panes,
Latching onto the iron rails
As I watched the pouring rain
And thought it was a giant fuzzy elephant
That was spraying down from the heavens.
My eyes land on the perfectly painted
Silhouette of a ballerina dancing across the canvas
Blissfully unaware of the world that was her stage
And I go back to paint-stained little fingers
And my grandpa shaking his head
At the half empty tubes of paint
Wasted on that terracotta pot
That rainy afternoon I thought I'd
Daubed-smeared-stained a masterpiece.
I go back to the lanes that once were
Highways in my head
The Peace Pagoda and how
unbelievably humongous it'd seemed
Twelve summers ago
And how we'd never made it to the last stair
Settling for sugarcane bites midway.

Revisiting the old,
I'm awestruck at how larger than life it all was
And how wee it really is
Like a much adored dress outgrown too soon.
I go back to the time
Tiny little parts were the giants I saw
And now the entire world seems to
have shrunk around me
Squeezing the breath out from my lungs.

I look back at the little girl with twinkling eyes
Who couldn't wait to grow up
When she was pinned into place on adult feet by her elbows
On the foaming shore
And a strange sense of sadness grips me
As I take in her tired face now
Wondering how far up the horizon she can actually go
Fervently wishing the world would stop spinning around her
That Time would lose his gilded wings
And just slow down to a stop.
Suspended in chrysalis,
Warm tears blaze down her cheeks
And I hear my cold-blooded wisdom say
The caterpillar days are long gone
It needs to strangle and suffocate for wings to sprout
For the cocoon's a cage you have to break out from
To be borne by winds and touch the velvet sky.

The Lone Survivor

Anannya Chakra
BA (Hons) English, 2nd Year

In memory of Sudan, the last male northern white rhinoceros

If animals had a voice that like ours could be raised in protest, maybe they wouldn't be so blatantly ignored or mercilessly killed.

Once upon a time, I was a little boy making my way across the savanna with the sun beating down my back, for a playful plunge in the sudd. We were 700 strong when you took us gentle giants captive. The decision about how we should live was made between you and your brethren. Why? Because you're the most intelligent of species and you have this birthright to dictate the rest of our fates. We became a part of your African menagerie and you earned world recognition, never realizing or acknowledging that we too are sentient beings, not inanimate objects for display.

A young bull, I felt so important when you came over to see us, singling me out with your little finger. "Mommy look! That's the one-horned rhino!", your young ones said, proud of their ability to recognise animals relying on their memory of the brochure. I'd softly grunt in reply, try and strut around but my weight borne on my little legs would impede my intended movements. In time, I had kids of my own and I watched them die before my eyes. Feet shuffled to and from our enclosure at an unremarkable pace every day till I couldn't distinguish and stopped caring altogether. On the savanna, our numbers were dwindling alarmingly. Here we were imprisoned and gradually marching to certain death; there they were in the wild -easily, mercilessly poached in crashes- and for the first time since my capture, I thought to myself, "At least I'm alive now and that's something to be thankful for! There'll be more calves. We'll wax and multiply again."

Only we couldn't. The captivity took its toll on us and we lost our sons. It was then that you released us back into the wild.

"Everything's going to be just the way it should be", I thought but it wasn't anything like I'd supposed. I wasn't the carefree bull I once was. I couldn't be. Our horns, often perceived as ugly, were constantly threatening our very existence. Constant surveillance of that limited territory and freedom in the quasi-wilderness was keeping us alive but not increasing our numbers even when we were taken care of and you poked and prodded to discover why.

I'm an animal, lacking the sort of intelligence that you proudly possess so I fail to grasp why you would incessantly worry about our plummeting species, taking it upon yourself to govern our lives instead of exhaustively researching whether our horns were as magical as a panacea as some you thought and finding an alternative that didn't involve taking one life to save another. What is one horn for you was an entire life for us. You took the horn and left behind a leathery pachyderm in the penultimate paroxysms of death.

It was that fear that led to my dehorning.
"It'll keep him alive", I heard them say.
"What is the point?", I thought.

Silent wisdom that comes with age had taught me there really isn't much difference between dying and getting poached, especially at this stage when I know I'm the last one standing, with a fall I can see clearly now.

I battled against the constant throes of agony brought about by age. Vulnerability- I'd always known but learning to live with debility was something new and I'm thankful for the coup de grace, I wasn't doing much other than breathing through pain anyway. As life left me, I looked one last time through my dimmed beady eyes at James, my weeping caretaker who was trying to soothe his "buddy" in the walk to the other side, attempting to thank him for his love and belly rubs, hoping he'd understand that I loved him back.

As the lone survivor of my subspecies, my death spelt the death of the dream of the revival of our species. But what would you do if you were the last human on Earth, living with the knowledge that after you no one would look the same or have the same intelligence that you're evidently so proud of? I want you to know, it isn't romantic or self-validating through the myth of the survival of the fittest to be the last of one's kind to tread the face of the Earth. It's lonely, heartbreaking and depressing to live with a sense of deficiency and defeat in the inability to propagate your race and keep your kin alive.

You've ravaged Nature long enough, in your anthropocentric entitlement and stupidly arrogant dismissal of consequences but now you'll feel her fury when she exacts her revenge, dismantling and destroying your world in fire and water. For far too long, you have arrogated to yourself intelligence, claiming universality for that which only you possess, negating all else as you go from one atrocity to the next, ensconced in your staunch belief in a happily ever after, befitting only you as the foremost of species. You've always written everyone's history and destiny but one day, you too will be the lone survivor till the day you'll disappear like the dragons, dinosaurs and unicorns-like breath in the wind, nowhere to be found, much like your own tail, surviving only as a symbol in collective memory like the stick figures of your predecessors on the walls of caves. All that will be left of you is tales- of your sometimes glorious, often shameful yet self-aggrandizing past. They would be heard but not listened to until finally they're not told anymore, and your memory eventually fades into nothingness.

Remember, it's a short walk from exotic to extinct and an even shorter one to non-existent. Look at me and you'll know. It was our horns that enticed you to kill us but just wonder as to what will wipe you out?

Metacarpal

Shreyasi Banerjee
BA (Hons) English, 2nd Year

When I came here, my fingers were long and sculpted.
My mother called them pianist's fingers, drummer's hands
Pretty long nails, slender digits
A thumb shaped like a jasmine branch
Nails pink and unpainted.
Then they turned short and stocky. Lazy fingers.
A testimony to the sugar, the chocolate,
The indulgence, the sheer pleasure of it all
My mother stroked my fingers and said they were warm.
Now they're not.
He held my hands in his, his warm July hands
And he said, "how come-
All skinny people have such cold fingers?
You must be freezing." My nails were black
The right hand was bitten to the cuticle.
He kissed me on the pavement with one more puff from the dying cigarette still clutched in my hand
And he said, "my hands are warm."
My fingers are knobs now; levers which hold me up
Claws which clutch at my throat but never make it stop
I'm cold, and I realise, I never loved him.
My cold digits and my cold toes and my cold nose
My frigidity
Will never allow love to blossom.

Sepia Stills

Shreyasi Banerjee
BA (Hons) English, 2nd Year

When I sit in this room, listening to music
From back when I had two tally marks on my wrist
And ran back and forth from 115 Park Street every day,
I think.
She told me it doesn't do good to think,
I'll send myself into a spiral
And maybe I will. But here I am
Twenty kilos lighter and seven years older.

The room still exists, and maybe, just probably
I left a part of me back there too.
The DNA from my hair- short
And choppy in the beginning,
Falling out in the middle from numbers
And vomit and thermoses- it was long.
And now, blue and black strands,
Little pieces of me, material and touchable
On the divan and the marble floor and the dust that I couldn't touch.
The DNA from my blood- the tourniquet
Trying to staunch death
The blood that signified I was alive
The blood that signified I was woman
The blood of pain and emancipation and love and heartbreak.

The stain on my finger from touching the pot of ink
The blot on my thigh from my grandfather's fountain pen
The aux cord that doesn't work-
The room has ghosts of my screams
And ghosts of my laughter
And the tea I didn't touch that morning
On the table where I wrote and erased Kurt Cobain's suicide note
Remains untouched.

The Land Where the Crimson Flows

Premtosh Kar
BA (Hons) English, 2nd Year

The barren land is chosen,
War-conch resounds, as hard
As the clamouring of swords.
Warriors preparing themselves
With rested bows and quiver filled arrows,
Readying thy march through the gates of hell.

While the sad hope of heaven remains,
Our warriors grimace, memories rush in,
Of the smile of his only child,
Of the touch of his wife, of the firmness of her husband,
Of the cradled love of his mother, of the father's hardened pat..
All left back, at the place he called home

For his other life beckons,
The one he has lifelong trained,
Marched forward, they have
A comrade's call away
Battalions and strategies centered,
Mounted their stallions to meet the other side.

At the awaited lands,
Where the Valkyries have pegged their tents
Soaring above the high skies, the crows
Bear witness of the war's screams,
Soaking the earth in a painful crimson.
Unwashed, unhinged with the thunder and rain
What seems like an eternity of,

Swords clashing and slashing,
Arrows flying and piercing,
Metal against metal, steel against steel,
The battle keeps on razing, leaving blood, sweat and meat

The war continues for days and night,
whilst some fight for victory, some for peace,
Some for reason, some for the lust,
Without a speck of thought, but one, survive
To survive, survive for thy kingdom,
To survive for the heaven back home.

As it ends only a few of the many are left,
Cut and bruised they stand,
Witnessing the end of war,
They return to the ranks of the mighty

Smiles on the outside, haunted by the horrors within,
Scars on the outside, loss of their souls within

The hypocrisy is almost laughable,
We preach about peace, yet breed chaos,
We stand for unity and but take differentiating stands
We pronounce love and life, and yet court war,
Call our maimed children, to build our future,
While fighting for laurels, for some bards' lore

All that remains, is a
Barren land pierced with swords and arrows,
Unheard cries of the living-dead and
Unanswered prayers of the martyrs, alike
Etched in the history for some future fantasy, herein lies,
The land where the crimson flows.

A failed attempt at knowing Life

Yashkant Pandey
BA (Hons) English, 1st Year

I would never have thought the grimy streets of Delhi, with rainwater puddled in every other corner on my way out of Malkaganj could tell such amusing stories. I never would have thought about the splattering pools of water, the hollow echoes of banana vendors across the street, the slowly disappearing barks of the street dogs or even the *tring-tring* of bicycles making their way through the crowded street would ever make their way to my ears, plugged to a Sia melody, on my way to the college.

What invokes such sensitivity in me? Nothing. The thing is, I had been feeling lonely lately. My roommate, who could add a little flavour to my life, had gone on an excursion. Not that the details matter at this point in time. And I had been alone, at my room, in the college and on my way back to my room. I wouldn't have noticed if it was not Ganesha Pooja, which gave me a reason to stroll across the street, hands in my pockets, occasionally making their way to adjust the hems of my T-shirt as I walked an injured walk on the pitty roads.

So that day, like all the other days I walked out of my room. The weather was good. And by good, I mean, it was not sunny. It had started to get dark, and my *gali* had started to stink (like all the other days), with the water from air-conditioners from neighbouring PG rooms dripping in a *tip-tip*. And the air Was filled with the oily smell of pakoras from the nearby dhaba and the characteristic smell of cardboard from its workshop in vicinity. And then, unlike all the other days, I smelled flowers and incense and candlesticks. I am just being dramatic here. The loudspeakers had already announced that Ganpati was here, for real. I did what had to be done. Prayed. Looked directly in the eyes of the lord, as Sukhwinder Singh's voice from Agneepath tore through and threatened my eardrums, I prayed for mercy and help. And then just like the carefree kid that I am, hands back in my pockets again and head in an awkward tilt, I decided on walking through the meandering *galis* that I had not explored yet. It was dark but of course not quiet. I could hear the joyous noise of the kids from the nearby colony as they romped playfully in the park right in front of me. The streetlamp flickered and so did my ginormous shadow that appeared on the cemented street. After only a few days spent in college, I couldn't bear to look at their happiness (I'm mean that way, forgive me) so I decided to turn my back at them and resting my

tired butt on a bench. Oh, how relaxing it was. Sia was still stuck on "you'll pull through it, you're safe," but something about those lines hit me hard. Before I could pursue a zillion thoughts that were flooding my dormant-for-a-week brain, I found an old couple who entered the park and sat on the bench right in front of me. To keep matters consistent, let me tell you, the kids were still playing behind my back and I was pretending to not notice their fun. Interestingly, I possess an excellent pair of ears.

The old lady gave me a smile, and I returned one to her. The kind which flatters people. The old man didn't bother to look at me all in my humble glory. Something to do with pointless insecurity from a kid clad in a black T-shirt and blue shorts, who smiles whenever he's clueless. Well, jokes apart, you can place the level of my occupation when I tell you that I observed the couple and their movements for another two hours. They were lovely people, trying to make good use of the remainder of their lives. The only grievance I have from them is the rather intimidating gaze they fixed at me right from the moment they sat on the bench. They smiled at the things I couldn't place. I readjusted my collar twice, my earplugs thrice, my hair once and my glasses twice. It took me quite some time to realize that they had not been looking at me but at the site behind me-- the site I chose to ignore. I looked back and I saw the kids still playing. But this time I didn't choose to withdraw. Something hit me hard, as I was taken back down the redolent memory lane to when I didn't care about the next moment, forget the next day. I was carefree but not careless. Life was not heavy on me, but I still had responsibilities to bear. I was heartbroken sometimes but never scarred. It was the life that I wanted to live now. Maybe that's what the old couple found amusing about the little kids. Their lives. The lives they must have overlooked catering to the many roles they'd have to get in the skin. What about me, you ask? What about me? That is when; I became sensitive to the manifold chorus of life that reverberates around me. The small details that I overlook, with the ear-pins punched inside and the songs turned to the full volume. There's life in the flickering of the streetlamp, blaring of a motor horn, mooing of a cow or even *tring-tring* of a bicycle. There's life in the ringing laughter of small, joyful kids and life in the dripping of water from tree leaves after rain. There's life everywhere which we fail to notice. Which I failed to notice as I embraced the mundane lifestyle as it came to me. Now I don't just walk to college. I watch a full-length movie on my way, as my steps cover every small bit of the life that surrounds me. I see ideas and dreams and facades of emotions shrouding the entire city in a thick, cold mist. I hope this mist doesn't blind me too soon.

MEMORIES

Kanishka Agarwal
BA (Hons) English 1st Year

Hello, everyone. So, this one goes back to the days when we had the time to stop, feel the rain on our cheeks, smell the proverbial roses. This isn't a story about me alone; it's a story about me and her- my bestie and my rock, my sister. From the very beginning, I was the disciplined, rule-abiding, quiet one. She, on the other hand, was the excitable, wild one, the weirdo. She was my Sonu and I was her Titu (and no, that wasn't a likeness we gave ourselves). With tiffins being our only incentive, we were pretty regular to school. From dancing in the washroom to passing chits in exams, it felt like we were taking life by a storm; making it bow down to our will. But as someone once said, change is the only constant in life.

It happened when we were in 10th grade. I guess life changes just like the phases of the moon, and this waning moon gave way to a pitch-black sky. My sister was diagnosed with Stage 2 Cancer. I only found out about it weeks later. After days of listening to, "No, no, she's just having a little bout of normal cough and cold. That's why she isn't attending school", I finally put my foot down and decided to visit her. I still remember the image as clear as day. She had a mask covering her mouth. I was forbidden from even sitting beside her on the bed for fear of getting infected. So I sat on the ground. And we talked for what seemed like hours. I could sense the familiar cheerfulness so characteristic of her, despite the weakness evident in her eyes. When I took her leave, however, I felt this uneasiness that I couldn't quite put a finger on. It was when I reached home that Ma broke the news to me. It's funny how now that I think about it in retrospect, I can better process the emotions. But at that moment, all I felt was mind-numbing helplessness. By pure coincidence, I was reading this novel by Patrick Ness called *A Monster Calls* where the protagonist's mother was diagnosed with terminal cancer. Never have I felt so at one with a character. The doctors said that it was very fortunate that it had been discovered before it had the potential to become fatal. However, that didn't lessen her pain or the number of chemo sessions she had to endure.

Fast forward to a week before her birthday. I wanted it to be special, so I decided to make a photo album with all the memories that we had made together. I didn't even realise that I had started crying. My mother sat beside me and asked me, "Are you frightened?"

"Of course I am," I answered. "I don't want to lose her. I just don't. I can't even imagine my life without her. Why did it have to happen to her? Why not me?"

I was plagued by the guilt of letting her suffer alone. All I could think of was somehow switching places with her, making her life a little easier. Little did I know that my fervent wishes to ease her pain were being heard. Soon enough, she restarted school- not regularly but at least for half-days. It was a hopeful beginning. One day, she came to my class and called me. Once outside, I realised that she needed help with her wig. After adjusting it the way she wanted, she winked at me and said, "Looking sexy, right? I know, I know. I've always been the hotter one." We burst out laughing. I skipped class that day to just sit at the staircase when I felt a speck of water on my skin. It had started raining. I found myself sitting in the rain, not to enjoy it but to hide my tears instead.

I realised that even if somehow, I could have changed places with my sister, I would never have dealt with the situation as gracefully. I would never have been as optimistic about it; I would have crumbled under its burden. She is living proof that everything that happens, happens for a reason. The problems you face are given to you because you are the most suitable to handle it. She taught me that instead of cursing life and being bitter about your predicament, you should feel proud that you were chosen to be the strongest one. Once I mulled over these thoughts in my head, I didn't feel helpless anymore. I recognised that it was my responsibility to protect her smile, to be her strength. And I knew I was the person for the job. With this conclusion drawn, I noticed that the rain had stopped and that all this while, it hadn't been raining outside but on the inside.

Dear kashmir

Ifrah Fatima
BA (Hons) English, 1st Year

I am sorry for not seeing you for a long time. I hope you are somewhat better than how I left you last time. Life here is going just fine; the drudge that it is. What is not fine, is that I yearn to be back with you.

I miss the Jhelum that flows across your beautiful yet sad face like a teardrop. The aroma of your fresh, spring-soaked valleys often wafts past me, reminding me of the childhood I have spent in your lap. You know, whenever a nightingale sings in front of the window bars of my room, my arm throbs with the absence of my Shahkuk. Every downpour here mirrors my visage every time I long to be back in the jewel called Dal, on a Shikara, smiling a smile that is now a stranger to me. Each autumn breaks a string in the lyre of my heart when I open my old book and pluck that dried Chinar leaf (the one you had dropped in my lap on a dusky August evening) from between the forgotten yellow pages. Those little Pheran-clad girls, shouting in Koshur after the sheep flock, often haunt my dreams. The snowless winters here remind me of Abdul Chacha's steaming Kahwah and the snowball fights we used to have.

But tell me about you- I recently heard that you've been having a rough time. Why, dear, are you being made a forbidden hell after having been called 'Heaven on Earth'? I am restless but my parents don't let me come to you; nor can they tell me anything due to the internet shutdown. Oh Kashmir, my love! The Jhelum is bleeding. Your petrichor is now polluted with acrid smoke. The Shahkuk has been silenced by thousands of bullets and screams. Instead of Shikaras, bodies float on the Dal. Someone has set the Chinars ablaze. I heard about Abdul Chacha's demise (and may he finally rest in peace). Promise me, Kashmir, that you'll keep my parents safe. I promise to come back to you to make you proud.

I send my love to you with the north-bound breeze. I will wait for the cherries to blossom. I will come and sit in the lap of your apple orchards. We'll walk hand-in-hand and talk till sunset. Just close your eyes and we'll be together again- in the serene valleys, listening to the Shahkuk sing along to our songs.

Aftertaste

Soumya Vats
BA (Hons) English, 3rd Year

Visits to Nani's place tasted of ripe mangoes with a tinge of *chaat masala* and *kheer* that Nani would serve with a sprinkle of red magic flakes. Each unsuccessful attempt by mom in recreating the recipe taught me that the whole is more than the sum of its parts. Visits to Nani's place had a tinge of buttery ease to them. I'd relish each course hungrily but dessert would be over before I had a chance to look at the menu. As the sweetness of Alphonso dimmed over the years, so did my visits to Nani's place. There comes a time when a tiffin box ceases to be a treasure chest of unknown flavours and morphs into a tin container for leftovers. When that happens, I lament over how *desi ghee* tastes stagnant on reheated *chapatis* and cumin seeds refuse to hug baby potatoes like they used to. Maybe it was the way saffron strands from *Khari Baoli* would roll in my mouth that makes me look for the *kheer* in the sweet memories I have devoured without tasting.

I have learned not to underestimate canteen's *Chowmein*. Its questionable ingredients and average preparation, a solace that envelopes the afternoon sun with each bite. The drizzle of the mysterious green sauce, a sedative that drowns out the Hans humdrum. And I hope this meal lasts long enough for me to miss it later. Perhaps, the vinegar will linger on in future lunch breaks not sandwiched between lectures, a persistent ghost from past's wok. The crunch of cabbage will recall traces of the voices that belong only to those flimsy plastic tables. Hans canteen tastes like sickeningly sweet *Special Chai* that warmed me that December afternoon. Hans canteen is also more than the sum of its parts.

Sometimes, I wonder if it's the ingredients that I will miss. Other times, I trick myself into focusing on the aftertaste.

Introduction to Cryptography

Shubham Kumar
BSc (Hons) Maths, 3rd Year

Cryptography is the technique of securing information and communications through the use of codes so that only those people for whom the information is intended can understand and process it. Sounds too dull and cumbersome, doesn't it? Well, in layman terms, it simply means the art of restricting the access of our data from the attackers. The term 'data' here refers to information which can vary from being as small as the click of a mouse to as important as the data residing with the FBI. Technically speaking, the process of scrambling this data so that it is illegible to the attacker is called encryption, and the process of recovering the original message from this scrambled text is termed as decryption. These two processes form the backbone of what is known as the 'encryption system'.

The next question is which of these two steps needs to be more complicated in order to achieve a better level of encryption? Some might suggest the former, whilst the others might opt for the latter. Interestingly enough, however, it is indeed a vague question and generally, the level of complexity of the encryption scheme is roughly of the same order as the decryption scheme, and one can't upgrade one without improving the other. In simpler terms, it means that as the lock of a door gets upgraded (for example, from a simple padlock to a sophisticated fingerprint scanner), the corresponding key will also get upgraded (from a simple padlock's key to a complex fingerprint sensor).

Historically, cryptography and encryption have been wrongly used in an interchangeable manner, this can even be found today. Psychologically, the people are not to blame here, because the term cryptography did not gain its actual meaning until recently with the onset of computers, digital currency, improved banking facilities, password management, etc. The next curious observation would be as to how the improvement in the aforementioned fields has led to an increased emphasis being given to the field of cryptography. To answer this, we need to understand the four features which cryptography provides us with. These include the fact that information cannot be comprehended by anyone it wasn't intended for (confidentiality). Secondly, the inability of information to be altered in storage or transit between the sender and the intended receiver, without the alteration being detected (integrity). Third ly, the creator/sender of information cannot deny his or her intention to send information at later stages (non-repudiation). Lastly, the identities of the sender, the receiver and the destination/origin of the information are confirmed (authentication). The four of these constitute the basic necessities when dealing with a computer network and hence, call for an improved and secure cryptographic system.

Today, cryptography finds its uses in an array of fields, and one can witness its applications around the clock. From receiving a "Good Morning" message on WhatsApp to sending emails via Gmail, from making online purchases via debit/credit cards to watching Sacred Games on Netflix, everything is protected against the infiltration of non-authorised parties.

The recent advancement in the arena of shopping has been the introduction of online platforms, thereby bringing in ease and comfort. However, these platforms rely heavily on cryptographic standards for their functioning, as integrity, non-repudiation and authentication are indispensable while placing an order. So, what for us, is merely an 'Add to my cart', must have been for the cryptographers a long and tiring challenge to assure that the aforementioned objectives are achieved. Surfing movies and TV shows on Netflix and dish connections also involve cryptography. The subscription which is bought for these platforms authorises the customers to use them. The scrambled data received from satellites is unscrambled with the help of a unique number associated with the subscription that you buy. In the event of an unauthorised person trying to access the signals and lack of this unique number, the decryption will not occur in the manner that it is supposed to and hence binge-watching would remain a distant dream for such souls.

Cryptography also comes into play while withdrawing money from an ATM or sending emails that might contain sensitive information which the user might not want everyone to see. With the advancement of machine learning and artificial intelligence, consumer data has started gaining importance and advertisement companies are willing to pay large sums of money for the same. It is here that cryptographers have a crucial role to play, the failure of which can lead to crimes such as data theft and data sell-

ing. The most prominent example in this aspect is the 'Facebook-Cambridge Analytica' scandal and the breach wherein the entire data of an individual registered with the 'UIDAI's Aadhar Card' was being sold for less than a buck!

Cryptography even helped during World War II, wherein the Germans hailed atrocities upon the world. An English mathematician and computer scientist, Alan Turing devised a machine which, as per the Morten Tyldum directed the movie 'The Imitation Game' starring Benedict Cumberbatch, was termed as 'Christopher'. Christopher was successfully deployed to crack Enigma, the secured device used by the Nazis to communicate their plans of action in the war. Turing, along with his team and the use of statistics, was not only able to turn the tables in favour of the Allies but was also successful in reducing the duration of the war by up to 2 years, thereby avoiding the loss of millions in terms of money and billions in terms of lives!

Untitled

Vidushi Arya
B.Com (Hons) Commerce, 2nd Year

I lay here in the moonlight
Wondering if I need to become
A prism to reflect the same
And force the clouds of melancholy
Away from the deep recesses of my soul.
I now know that death is as inevitable
As flowers withering; it offers no escape.
Every inch of me has died,
Slowly and steadily, with every touch.
Acceptance offers no respite.
The warmth of the bed transitions
Into the ice that falls in the winter months.
Every rope tying the cot together
Becomes the nightmares I relive
Every time my eyelashes meet my cheeks.
But I still hide.
Hide these tears inside the pocket
Of melancholy that's been stitched
To keep myself together in the hope
That the memories will someday go away.
The bedspread I lay upon
Has been embroidered
Using threads of self-hatred which
Gradually became my sole comfort.
Sadness, it seems, must be wrapped
In beauty sometimes.
No one pities me; they prefer hurling
Abuses, ensuring that I keep enduring
These demons till the end of time.
So much so that the chains that
Once trapped me, now
Seem to be a gruesome burden, and
I've been peeling off each expectation,
Each idea of normalcy and propriety
With every layer of fabric that once
Adorned this body.
Maybe now I can finally be free.

Summer and Sonder

Udayveer Singh
BA (Programme), 3rd Year

Same old terraces,
Similar old ties;
Vagabonds for visitors,
Years have drifted by.

New kids on the block,
A few too many roads;
Love still within our hearts,
But we're living in episodes.

Want nobody to see me,
Hoping too loud out here alone,
Unsettled floating butterflies,
Accompanying doubt within my core.

Of all the stories I've had,
Bright towns have never been in mine.

Perhaps the winds here whisper more,
Or the dull dusk is a stranger too kind;
Perhaps peace has been here before,
Or is it just melancholy's thousandth time?

"The Self" Series (A photo-story)

Aakriti Thatal
B.Sc.(H) Anthropology, 2nd year

Reyhan Tamang
B.Sc.(H) Maths, 3rd year

Note:
Everything of everything is in everything.
The same underlying facets that make a blizzard.
You and I are different conglomerates of the same atoms.
Bound by the same forces in the most elementary level and still distinct in shape and function, existence.
Still, the same.

However, this moment, I choose to dare and perturb the balance of ambiguity in my system of being, and ponder over this complexity that I am and attempt to heedlessly make my way through the words that I hope will follow.

Systems being created out of mere dust that call in to hold a place in the Multiverse, as scintillating bright bodies of importance, affecting every single entity, existent, in the Whole system, maketh a person?

From being a singular body of mass and energy to well fragmented, distributed sheets of fervour and zeal, our bodies' organization holds significance so much so, one's dysfunction, affects the others, adversely.

Don't we all start as small dots which differ in size and abilities, differentiate and shed differently, appear as different miniatures under the microscope, and have distinct abilities with different pathways and different fates? As these different dots, now, come to combine together, forming a larger dot in the Universe, its fate as something larger is confirmed. Months of adjustment, and seeking nourishment inside the system of another being, the latter making sure that the entity inside it does not collapse, we are born.

Enter, the world.

Amongst and in the midst of all the slightly ordered sets and blows of energies, and nothing more, we have the ability to know and to feel, fortunately enough.

Time has cruised me by, so I have watched, my entire life. Considerations about what I feel and what I should, consistently trouble me. Be that as it may, one can't think and feel simultaneously. Along these lines, would it say it isn't valid that all idea is nevertheless a bit of hindsight or one that is created?

"These hanging limbs Gravity affects
Are only to travel back to the
Stretches and squishes
I reckon, where
There is an attempt to keep the decadent alive,
To feel, to think."

Attracted to the illusion of a thought, with lucidity so loud it makes reality hide in shame, one feels the need to conjecture and conjure up a tale, not to tell anyone but to themselves, to make the singular entity feel worthy of a feeling so profound. When energies work for you and all the forces in Nature conciliate to waver all the positivity to your single system, when your placement in this cosmos feels like a priority, the illusion envelopes a core with awe and yearning.

However, I think my life is a beneficial interaction of me being a cheat and a disgusting lie with a veracity that I am a contemporary gadget.

Hence, all control patterns collapse, and in it, is a constant exertion of thought and expression.

Is there a fruitful end?
All is disconcerting.

Semester with a Side (A photo story)

Soumya Vats
B.A. English (Hons), 3rd Year

Farhan Mozammil
B.Sc. Anthropology, 2nd Year

We go through jars without realising their capacity to contain more than liquids, millennial cakes, knick-knacks and loose change. Stationery is capable of speaking in more ways than it is perhaps intended to. Snacks converse with more than grumbling stomachs. Objects have inbuilt metaphors bursting with stories of their shelf lives. This is an attempt to incorporate their function with the trajectories of those they help function.

Physical Setting: Semi-clean table in Hansraj College's Canteen.
Chronological Setting: A Saturday afternoon but imaginatively spanning over six semesters.

The Classmate notebook is decidedly-half empty, violated with aimless doodles absentmindedly used to wave away specks of time. Its dogeared edges give it a look of weariness similar to its owner's expectations. The first day it's surrounded by felt pens from all hues of the spectrum, a situation as daunting as it is tempting. Uncertain of the parts the highlighters might choose to glide on. Wary of the labelling tendencies of sticky notes. Like the overly adhesive page flags, certain thoughts cannot help but wander into trembling fingers that leaf through a dear book. Maybe the next half of the notebook will finally witness colour.

The mystique of a polaroid lives in its definitive, overexposed quality. Do-overs are not indulged in, the skin is overexposed, hair stamped darker than eyes remember them and eager smiles caught in unforgiving physical evidence of their existence. Similar to the memory it attempts to capture, it is saturated. Nostalgia dwindles to grasp on to selective flashes, recreates entire days in terms of those fleeting moments, a polaroid pinch shrouding whole servings of digital albums. Later, these flashes live on displayed on refrigerators and vision boards, like accolades for summing up entire trips in 46× 62 images.

The yellow tube of Maybelline kajal has previously lived inconspicuously with gel pens and Camel pencils in school pouches. Dress codes scared it into hiding as the yellow drowned in a sea of blue and black. Kohl is not meant for eyes that steal away from gazes. Its bold ink flirts with the tinkle of silver jhumkas. It publishes nonchalant tales, the kind that are in-your-face in every sense of the phrase. The charcoal often leaves residue of its courage, like any good tale aspires to.

Where snacks are concerned, Little Hearts doesn't believe in subtle packaging. Dunked in milky tea, the pieces sometimes break off, too fragile to soak the overpowering liquid surrounding it. The mushed remnants of sugary promises become visible at the bottom of the paper cup. Ideally, one packet serves two, but it is a tough task to find enough heart for that sweet sacrifice.

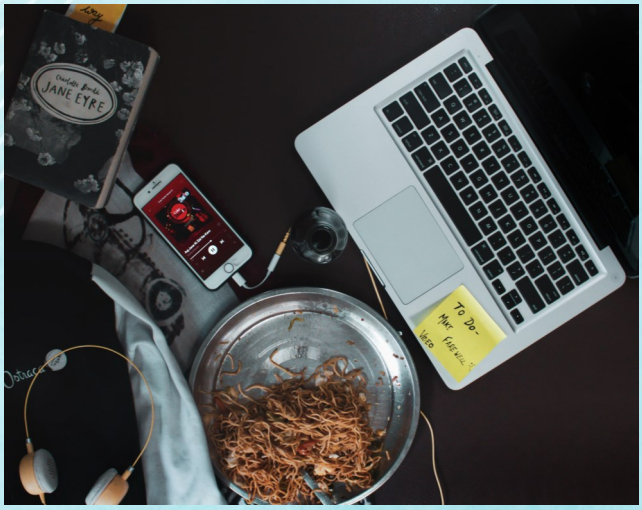

As it so happens, the farewell video gets put off till the last unavoidable moment almost in prayer that ignorance will eliminate the need for it. Photos are gathered, videos fished for- most recollections with no space for the creator in them. Emotionally manipulative music garnishes montages that aspire to cause mascara-laden faces to smudge. The last slide sums up the all-too clear purpose with "Goodbye," contradictory to assurances that any such parting is nowhere near.

There is a pressing social need to declare safety pins to be the unsung heroes of farewell events. They cheer on the expensive folds of saris, concealed backstage yet masterfully holding the act together on a novice body. These metallic marvels connect more than silk fabric by clicking into place securely. You start off with a pack of them, shedding them mysteriously along the way until a few remain to exhibit their metallic glint, somehow as striking as the embellished borders. That is when, for the remaining day at least, the safety pins seem immune to rust.

HANSRAJ COLLEGE

UNIVERSITY OF DELHI

Tel: 011-27667458, 27667747 , Fax: 011-27666338
Email: principal_hrc@yahoo.com
Website: www.hansrajcollege.ac.in